वर्ष ४
पूर्णाङ्क ४६

गुरुकुल-पत्रिका

ज्येष्ठ
२००९

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव
दर्शनवाचस्पति
श्री रामेश बेदी
आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

भगवद् गीता का सन्देश	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
ऋषि दयानन्द की वेदार्थ में क्रान्ति	श्री रामनाथ वेदालंकार
हरिद्वार की समुद्र मन्थन की एक मूर्ति	डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल
दान की महिमा	श्री ओम्प्रकाश
संस्कृति निर्माण के लिये शिक्षणालयों की रूप रेखा	स्वामी शिवानन्द सरस्वती

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

भारतीय शिक्षा क्रान्ति में गुरुकुल का स्थान

न्यायमूर्ति श्री विजन कुमार मुखोपाध्याय

गुरुकुलवासी प्रिय बन्धुओ तथा उपस्थित सज्जन!

इस दीक्षान्त संस्कार में सम्मिलित होने तथा आज यहां उपस्थित स्नातकों को अभिभाषण देने के *लिए निमन्त्रित कर के जो सम्मान आपने मुझे प्रदान* किया है उस के लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ। निःसन्देह यहां आने से मुझे तीर्थयात्रा का आनन्द अनुभव हो रहा है। वस्तुतः यह एक पवित्र भूमि है। सामने ये गम्भीर मौनमुद्रा में स्थित हिमालय की उच्च शिखाएं एक अनुविग्न सन्तरी के समान हमारी मातृभूमि की रक्षा कर रही हैं और इस के अन्तस्तल से निर्गत गंगा नदी की पवित्र धारा कलकल निनाद करती हुई गिरिशिखर से अगाध सागर तक अविश्रान्त भाव से अपने मार्ग का अनुसरण कर रही है। ऐसी भव्य परिस्थितियों में अवस्थित तथा व्यस्त संसार के कोलाहल से सुरक्षित यह शिक्षणालय साक्षात् शान्ति एवं पवित्रता के वातावरण में श्वास ले रहा है। यह विद्यामन्दिर वस्तुतः प्राचीन भारत के उन शान्त ज्ञान-सम्पन्न तपोवनों का अवशेष है, जिनकी पावन स्मृति अब भी हमारे साहित्य तथा धार्मिक ग्रन्थों में विद्यमान है। आज बीसवीं सदी में भी यह सम्पूर्ण प्रदेश वस्तुतः वैदिक भावनाओं से पूर्णतः ओतप्रोत है।

यहां आप के सम्मुख भाषण देते हुए मेरे मन में दो विचार प्रमुख रूप से उदय हो रहे हैं। सब से पूर्व मेरा विचार भारतीय सभ्यता के अनुपम स्वरूप, विलक्षण शक्ति तथा भारतीय इतिहास के परिवर्तनशील दृश्यों में अवस्थित सतत प्रवाह की ओर जाता है। *काल चक्र के प्रभाव से अनेक विकारों के उत्पन्न* होने के बावजूद लाखों वर्षों के बीत जाने के बाद भी भारतीय सभ्यता अपने मुख्य तत्वों को यथापूर्व धारण किये हुए है, जबकि विश्व की अन्य सम्पन्न प्राचीन ऐतिहासिक सभ्यताएं सर्वथा लुप्त हो चुकी हैं। प्राचीन मिश्र, असीरिया तथा बेबिलोन चिरकाल से विस्मृति के आवरण में विलीन हो चुके हैं। इस में सन्देह नहीं कि प्राचीन युनान की सभ्यता अपने साहित्य, दर्शन तथा कलारूप में अभी तक जीवित है। पर यह एक ऐसा पूर्णतः मृतप्राय प्रवाह है जिस का मानव समाज की जीवनधारा के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं। परन्तु भारत आज भी जीवित है और वह केवल भौगोलिक सत्ता रूप से ही नहीं, प्रत्युत वह उस की आत्मा है जो कालकृत अनेक ऊंचनीच परिवर्तनों के होते हुए भी अवस्थित है। आज भी विचार तथा भावनाओं की ऐसी सुदृढ़ शृङ्खलाएं हैं जो हमें प्रागैतिहासिक काल से सम्बन्धित कर रही हैं। मैक्समूलर का कथन है 'प्राचीन काल से ले कर आधुनिक युग तक के तीन हजार से भी अधिक विस्तृत

काल में भारतीय विचार धारा के विविध रूपों में हमें एक सतत प्रवाह दृष्टिगोचर होता है।' सम्भव है सामान्य दृष्टि से देखने पर ऐसा प्रतीत हो कि तथा कथित भारतीय सभ्यता एक अप रस्कृत पुञ्जमात्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं। वह केवल जातिगत बाह्य लिंगों भाषाओं तथा रहन-सहन के विविध शिष्टाचारों या रूढ़ियों का पिण्ड मात्र है। परन्तु सूक्ष्म निरीक्षण से यह स्पष्ट हो जायगा कि इन बाह्य रूपों की परि दृश्यमान विविधता में भी एकता उपलब्ध करना ही भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता है। वैदिक ऋषियों का लक्ष्य जीवन का अपने सम्पूर्ण रूपों में संगतिकरण करते हुए इस विश्व की परस्पर विरोधी विभिन्नताओं में एक व्यापक सत्यता का अनुसन्धान करना था। मैं यह दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि यह समन्वयपूर्ण आदर्श आधुनिक जगत् की सम्पूर्ण समस्याओं का सुन्दर समाधान कर सकता है, बशर्ते कि वर्तमान मानव समाज की परिवर्तित अवस्थाओं के अनुसार इस का उचित प्रयोग किया जाय।

इस के अतिरिक्त जिस दूसरी वस्तु ने मुझ पर प्रभाव डाला है वह है प्रकृति का वह कार्य जो उस ने हमारे देश की सभ्यता तथा विचारधारा के निर्माण में किया है। मानव जीवन की प्रभात वेला के प्रारम्भ से हमारे पूर्वजों ने प्रकृति के प्रति तीव्र आकर्षण अनुभव किया है। प्रकृति के इन्हीं ध्याना-वस्थित पर्वतश्रेणियों से परिवेष्टित एकांत प्रदेशों में सुकोमल रवि किरणों से सुशोभित वनस्थलियों के चारों ओर इठलाती हुई कलकल निनादिनी चन्द्रिका-समुज्ज्वल सरिताओं के तट पर ही मानव मस्तिष्क की महान् विभूतियों का उदय हुआ था।

जीवन निर्माण की वैदिक योजनानुसार बालक का एकान्त तपोवन में विद्वान् गुरुजनों के संरक्षण में रहते हुए अपने शारीरिक तथा बौद्धिक शिक्षण के लिए दृढ़तापूर्वक अनुष्ठान करना परम आवश्यक था जो उसे अपने जीवन के भावी कार्यक्षेत्र में अपना उचित भाग लेने के योग्य बना सके। न केवल शैशव काल में ही, प्रत्युत अपने सर्वषमय सांसारिक जीवन के अवसान काल में भी, वे लोग शक्ति सञ्चय तथा विश्राम उपलब्ध करने के लिए इन्हीं एकांत तपोवनों की कामना करते थे।

भवनेषु रसाधिकेषु पूर्वं क्षितिरक्षार्थ
मुशन्ति ये निवासम्।
नियतैकपतिव्रतानि पश्चात् तरु
मूलानि गृही भवन्ति तेषाम्॥

यही वे पवित्र एवं शान्त तपोवन थे, जहां ऋषियों के मस्तिष्क ने लौकिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान विज्ञानों के लिए साधना की तथा मानव समाज के शाश्वत कल्याण के लिए चिन्तनाप्रसूत महान ग्रन्थों की रचना हुई। संसार को त्याज्य एवं हेय समझ कर उस से पलायन करने की भिक्षुवृत्ति वैदिक भावनाओं के सर्वथा प्रतिकूल है। हमारे देश में संघरूपात्मक भिक्षु वृत्ति सम्भवतः किसी धार्मिक आंदोलन का परिणाम थी और बाद में उत्पन्न हुई। अतः इसे हम प्राचीन मौलिक आदर्शों का अंग न समझ कर उन का अन्तक्रम ही समझना चाहिये।

सभ्यगण !

मेरे हृदय में महात्मा मुन्शीराम तथा उन के सहयोगियों के प्रति अत्यन्त आदर तथा सम्मान की भावना है। उन्होंने न केवल वर्तमान शिक्षा सम्बन्धी आदर्शों को पूर्णरूप से प्राचीनता का रूप देने की साहसपूर्ण कल्पना की प्रत्युत एक ऐसे कठिन समय में जब कि हम विदेशी शासन में लोहमय शृङ्खलाओं से आबद्ध थे और शिक्षा नीति के निर्माण अथवा चुनाव में हमारी कोई सुनवाई न थी उन्होंने अपनी योजना को सफलतापूर्वक क्रिया में परिणत

कर के दिखा दिया। यह केवल एक सामान्य स्कूल खोलने का प्रश्न न था; प्रत्युत चिरकाल समादृत वैदिक परम्पराओं के आधार पर एक ऐसे सास्कृतिक वातावरण का निर्माण करना था जो प्रतिभावान् मनुष्यों के अनुकूल हो तथा विदेशी संस्कृति से सर्वथा मुक्त हो। सन् १६०२ ईसवी में एक छोटे से विद्यालय से प्रारम्भ हुई-हुई यह संस्था आज आश्रम प्रणाली पर आश्रित एक विशाल विश्वविद्यालय के रूप में विकसित दिखाई देती है। इस समय इस में वेद महाविद्यालय, साधारण महाविद्यालय, आयुर्वेद महाविद्यालय तथा कन्याओं का महाविद्यालय—ये चार महाविद्यालय सम्मिलित हैं। इस के अतिरिक्त फण्ड की कमी दूर होने पर एक शिल्प महाविद्यालय खोलने का भी विचार है। यह सब कुछ ब्रिटिश सरकार की रत्ती भर भी सहायता न मिलने पर हुआ। केवल यही नहीं कि इसे सरकारी सहायता प्राप्त नहीं हुई, प्रत्युत इस के विपरीत इस संस्था के अधिकारियों को समय-समय पर ब्रिटिश सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा।

परमात्मा का कृपा से अब हमारे देश में विदेशी शासन का अन्त हो गया है और हम अपने आप को अपने घर का स्वामी समझ सकते हैं। परन्तु यह स्वाधीनता अपने साथ परेशान करने वाली अनेक जटिल समस्यायें लाई है और उन में शिक्षा तथा संस्कृति सम्बन्धी समस्यायें भी कम विषम नहीं। इस समय हम पर चारों ओर से विविध सिद्धांतों तथा आदर्शों का आक्रमण हो रहा है। उन में से कुछ विशुद्ध विजातीय हैं और हमारे राष्ट्रिय चरित्र एवं परम्पराओं के सर्वथा प्रतिकूल हैं। इन विषयों में हमारे शासकों के कन्धों पर एक महान् उत्तरदायित्व है। इस बात को कहने की आवश्यकता नहीं कि अपनी सद्यः प्राप्त प्रजातन्त्र प्रणाली में सुख तथा शांति को उपलब्ध करने के लिए उचित प्रकार की शिक्षा का चुनाव करना तथा उस का उचित विधि से वितरण करना नितान्त आवश्यक है। मैं अपने आप को एक शिक्षाविज्ञ होने का दावा नहीं करता और नाहीं इस विषय में कोई मत या विचार प्रकट करने का साहस करता हूं। परन्तु इस समय एक नवीन युग में प्रवेश करने के कारण मैं भारत के प्रत्येक नर-नारी से अनुरोध अवश्य करूंगा कि वे भूतकाल का सिंहावलोकन करें तथा भारत में ब्रिटिश काल के उदय से ले कर अब तक के अपने देश में प्रचलित शिक्षा विषयक आंदोलन तथा इतिहास पर दृष्टिपात करें। इस से हम विविध सफलताओं व असफलताओं से परिवेष्टित अपने विचारों तथा आदर्शों का पर्यालोचन कर सकेंगे। हमारे वर्तमान अनुभव तथा भूतकाल की असफलताएं निःसन्देह इस बात का निर्णय करने में अत्यधिक सहायक होंगी कि स्वतन्त्र भारत में अपनी संस्कृति के भावी विकास का सर्वोत्तम मार्ग क्या है। मेरे विचार में, हम में से प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने ढंग से शिक्षा विषयक एक स्वस्थ सार्वजनिक विचार उत्पन्न करने में सहयोग दे सकता है और गुरुकुल, जिसने अतीत में हमारे शिक्षा सम्बन्धी आदर्शों को नवीन रूप देने में इतना अधिक कार्य किया है, इस नई व्यवस्था में भी निःसन्देह विशेष महान् कार्य कर सकता है।

सामान्यतः प्रत्येक शिक्षा प्रणाली के दो पहलू या दो प्रयोजन बताये जा सकते हैं उन में से एक तो सांस्कृतिक आदर्शरूप या सामाजिक पहलू है तथा दूसरा आर्थिक या उपयोगिता का पहलू है। दोनों परस्पर सम्बद्ध हैं। इस लिए विद्यार्थियों की शिक्षा के लिये विषयों के चुनाव करते समय उक्त दोनों प्रयोजनों को दृष्टि में रखना उचित होगा। जहां तक शिक्षा के सांस्कृतिक पक्ष का प्रश्न है, किसी देश में उचित

शिक्षा-प्रणाली उस देश के राष्ट्रीय चरित्र के सर्वोत्कृष्ट आदर्शों से अनुप्राणित होनी चाहिए। उस में इतनी योग्यता तथा शक्ति होनी चाहिए कि वह अपने राष्ट्रीय चरित्र के अनुरूप देश के छात्रों के हृदयों में आध्यात्मिक शक्तियों को अंकित कर सके तथा उन्हें ऐसा परिष्कृत कर दे कि वे अपने राष्ट्रिय जीवन का स्थिर व विकसित करने में सहायक सिद्ध हों। ब्रिटश शासन की स्थापना से ले कर गत शतक की समाप्ति तथा बीसवीं सदी के प्रारम्भ तक शिक्षा विषयक नीति में उक्त राष्ट्रिय तत्व की सर्वथा उपेक्षा की जाती रही है। जिस असम्भावित रूप से हमारे देश में ब्रिटिश राज्य की स्थापना हुई, उसे दृष्टि मे रखते हुए प्रत्येक व्यक्ति इसे भली भांति अनुभव कर सकता है कि शिक्षा का कार्य ब्रिटिश व्यापारियों को—जिन्हें हमारे पारस्परिक विरोध के कारण अकस्मात् इस देश का आधिपत्य प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हो गया था—सुविचारित योजना का कोई विशेष अंग न था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन व्यापार की एक ऐसी संकुचित भावना से प्रारम्भ हुआ था, जिसे वह छोड़ने के लिए सर्वथा अनिच्छुक थी। यह सत्य है कि १८७१ ईसवी में वारन हेस्टिंग द्वारा कलकत्ता मदरसा की स्थापना हुई तथा दस वर्ष पश्चात् जोनथन डन्कन ने बनारस में संस्कृत कॉलिज की स्थापना की। परन्तु इन संस्थाओं की स्थापना का वास्तविक उद्देश्य अपने अभिनव अधिकृत प्रदेशों में न्याय-व्यवस्था को चलाने के लिए हिन्दू तथा मुस्लिम कानून के कुछ पण्डितों को उत्पन्न करना था। भारत के अन्य प्रांतों की अपेक्षा अंग्रेज़ी शिक्षा का सूत्रपात बङ्गाल में पहले प्रारम्भ हुआ। परन्तु इस विषय में पहला कदम सरकार की ओर से न हो कर कुछ स्वतन्त्र व्यक्तियों तथा ईसाई मिशनरियों की ओर से उठाया गया। १८१७ में कलकत्ता नगर में वहां के कुछ प्रमुख नागरिकों की ओर से पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के आधार पर प्रथम शिक्षणालय के रूप में हिन्दू कालिज की स्थापना हुई। इस कॉलिज ने पाश्चात्य प्रभाव को ग्रहण करने में कोई कसर नहीं छोड़ी और अपने नाम के प्रतिकूल उस का दृष्टिकोण सर्वथा हिन्दुत्व शून्य था। इस शिक्षा में संस्कृत तथा अन्य प्राचीन विषयों को कोई स्थान नहीं दिया गया। कुछ ही वर्षों में हिन्दू कॉलिज ने ऐसे प्रतिभा सम्पन्न विद्यार्थी उत्पन्न किये जिन्होंने शीघ्र ही आंग्ल भाषा के गद्य पद्य में लिखने की प्रवीणता प्राप्त कर ली। इन घटनाओं से मकाले के लिए शिक्षा-क्षेत्र में आंग्लभाषा के पक्ष में निर्णय करने का मार्ग प्रशस्त हो गया और शीघ्र ही भविष्य में आंग्ल भाषा को ही देश की राजकीय भाषा का स्थान देने की राज्य की नीति निर्धारित कर दी गई। तब से पाश्चात्य शिक्षा की नई शराब हिंदुत्व की पुरानी बोतलों में डाली जाने लगी, जिसके दुष्परिणाम आज हमारे सामने हैं। उस समय विशेषतः बङ्गाल में, पाश्चात्य रंग ढंग फैशन तथा स्वाभिमान की वस्तु और अपने देश की प्राचीन शिक्षा, धर्म, संस्कृति तथा परम्पराएं सर्वथा गर्हित मानी जाने लगीं। परिणामतः प्रारम्भ से ही हमारी शिक्षा नीति एकांगी तथा राष्ट्रिय भावनाओं से सर्वथा शून्य थी और उस का स्वरूप तथा दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से ही विदेशी था। चिरकाल तक यही रहा जब कि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में इस की प्रतिक्रिया हुई। बङ्गाल में ब्रह्म-समाज ने इस उठती हुई राष्ट्र विरोधी भावना की लहर को रोकने का प्रयत्न किया। परन्तु वह इस में विशेष सफल न हुई। क्योंकि उस के पास राष्ट्रिय आदर्शों का कोई आधार न था। उस ने उपनिषदों के एकेश्वरवाद के आधार पर एक बुद्धिसंगत धर्म की स्थापना का कुछ प्रयास किया, यद्यपि उस ने उपनिषदों को अपौरुषेय वचन नहीं माना। श्री केशवचन्द्र सेन के नेतृत्व में ब्रह्म समाज ने ईसाई धर्म के

अनेक विचारों तथा कर्मकाण्ड को ग्रहण कर लिया था। जिस समय श्री केशवचन्द्र सेन बङ्गाल में ब्रह्म-समाज का नेतृत्व कर रहे थे उस समय उत्तर भारत में स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने आर्यसमाज आंदोलन प्रारम्भ किया। वह एक विशुद्ध राष्ट्रिय भावनाओं को लिए हुये दृढ, साहसपूर्ण तथा महान् आंदोलन था, जिसने उस समय बढ़ती हुई पाश्चात्य मनोवृत्ति की भावना को रोकने मे दृढ़ता के साथ विरोध किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती हमारी राष्ट्रियता के मूल तक पहुँचे। श्री अरविन्द के शब्दों में—'ऋषि दयानन्द ने वेदों को सदियों पुरानी दृढ़ चट्टान के रूप में पढ़ा और उस पर राष्ट्रिय पुनरुत्थान की योजना के निर्माण करने के लिए साहसपूर्ण सकल्प किया।' इस आंदोलन का सब से बड़ा लाभ यह हुआ कि राष्ट्र ने अपने खोये हुए गौरव, एव आत्मविश्वास को पुनः प्राप्त किया तथा सांस्कृतिक आध्यात्मिक पुनरुत्थान को जन्म दिया। जिस से हमारी राष्ट्रिय चेतना जागृत हुई। इसके बाद हमें अपने देशवासियों म तात्कालिक पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के लिए असन्तोष तथा अपने प्राचीन आदर्शों के प्रति निरन्तर बढ़ती हुई प्रवृत्ति दिखाई देती है। उस समय भारत के उच्च विद्वान् भारतीय शिक्षा पद्धति में प्राचीन भारतीयता की पुट देख कर प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्याओं का उचित सम्मिश्रण करना चाहते थे। सन् १८८३ ईसवी में श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती का देहावसान हो गया। १८८६ ईसवी में लाहौर में दयानन्द ऐंग्लो वैदिक हाईस्कूल स्थापित हुआ जो दो वर्ष बाद एक कालिज के रूप मे परिणत होगया। कॉलिज की प्रथम वार्षिक रिपोर्ट से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस के सस्थापकों का वास्तविक उद्देश्य अपने देश की शिक्षा नीति का भारतीयकरण कर के उसे अपने सांस्कृतिक आदर्शों तथा परम्पराओं पर प्रतिष्ठित करना था। तदनन्तर इस बात को स्वीकारकरते हुए कि पाश्चात्य शिक्षा ने हमारी बौद्धिक गतिविधियों में प्रेरणा दी है तथा कुछ ऐसे विद्वान् पुरुषों को जन्म दिया है जिन पर हमारा देश गर्व कर सकता है। रिपोर्ट में बताया गया है कि यह सब कुछ होते हुए इस के अनेक दुष्परिणाम हुए हैं। इसलिए राष्ट्रिय शिक्षा की माग है कि अन्य विषयों के साथ-साथ अपने देश की भाषा तथा साहित्य का उचित अध्ययन किया जाय और उस में भी विशेषत प्राचीन संस्कृत साहित्य को क्योंकि उसमें आत्मा, चरित्र तथा जगत् रचना आदि विविध विषयों के स्वरूप का यथावत् चिन्तन करने वाले ऋषि मुनियों के परिश्रम का सारवान् फल अन्तर्निहित है। अपने राष्ट्र की भाषा तथा साहित्य के अध्ययन के साथ साथ रिपोर्ट में अंग्रेजी भाषा के भी गम्भीर अध्ययन पर बल दिया गया है और इस बात पर भी आग्रह किया है कि प्राकृतिक विज्ञान तथा उस से सम्बद्ध अन्य विषयों के ज्ञान का प्रसार कर के देश की भौतिक उत्पत्ति को भी प्रोत्साहित किया जाय।

यह सर्वविदित सत्य है कि आर्यसमाज की अधिकांश जनता दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कौलिज से निर्धारित शिक्षा प्रणाली से सन्तुष्ट न थी। यह असन्तुष्ट दल, जिस के एक प्रमुख सदस्य इस सस्था के आदरणीय सस्थापक भी थे, प्राचीन वैदिक सभ्यता से निकट सम्बन्ध रखना चाहता थे। इस लिये पाश्चात्य परम्पराओं से सम्बन्ध विच्छेद कर के भारतीय नवयुवकों को शिक्षा देने की प्रणाली म क्रांतिकारी परिवर्तन करने का पक्षपाती था। यह है १९०२ ईसवी में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना का मूल हेतु। नि सन्देह इस सस्था का उद्देश्य अपनी प्राचीन ब्रह्मचर्य प्रणाली को पुनरुज्जीवित करना तथा शिक्षा

को जीवन का वास्तविक पथ-प्रदर्शक एवं चरित्र-निर्माण में सहायक बनाना था। इस के सचालकों की अभिलाषा थी कि बालक को शैशवकाल में ही संसार के दूषित वातावरण से हटा कर प्रकृति के शान्त तथा सुन्दर वातावरण में ऐसे निष्ठावान् तथा सच्चरित्र विद्वान् गुरुजनों की संरक्षता में रखा जाय जो उन बालकों के अन्दर गुप्त उच्चतम मानसिक व आध्यात्मिक प्रवृत्तियों को विकसित करने में सहायक हो सकें। उन के मानसचक्षु के सम्मुख प्राचीन भारत के नालन्दा, तक्षशिला आदि अनेक विश्वविद्यालयों का चित्र था।

इस में सन्देह नहीं कि दयानन्द एंग्लो वैदिक कालिज की शिक्षा प्रणाली गुरुकुल से बहुत विभिन्न है, परन्तु वस्तुतः वे दोनों एक ही स्रोत से निकली हुई विभिन्न जल धाराएं हैं। दोनों का आधारभूत आदर्श एक है। अर्थात् वे दोनों भारतीय तथा पाश्चात्य सभ्यताओं के उत्कृष्ट तत्वों का सुन्दर समन्वय करना चाहते हैं। उन के साधन भिन्न २ हैं और वे पृथक् २ होने भी चाहियें। क्योंकि वे भिन्न २ मस्तिष्कों की विभिन्न कार्य प्रणालियों पर आश्रित हैं।

इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि यह भावना आर्य समाज में ही न थी प्रत्युत उस से बाहर देश के अन्य भागों विशेषतः बंगाल में भी थी। वहां भी बीसवीं सदी के आरम्भ में राष्ट्रिय भावना की लहर उठी, जिसने अपने आप को शिक्षा सम्बन्धी विविध आन्दोलनों के रूप में प्रकट किया और जिस का लक्ष्य प्राचीन सभ्यता को पुनरुज्जीवित करना था। जिन दिनों गुरुकुल की स्थापना हुई, लगभग उसी समय श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने शान्ति निकेतन में ब्रह्मचर्य आश्रम की स्थापना की, जो बाद में विश्व भारती के रूप में एक विशाल संस्था बन गई। इसका भी उद्देश्य लगभग वही था। इन्हीं योजनाओं के नमूने पर बंगाल के खुलना मण्डलान्तर्गत दौलतपुर नगर में 'हिन्दू एकेडेमी' नाम से संस्था स्थापित हुई। बंग भंग के आन्दोलन के परिणाम स्वरूप १९०५ ईसवी में श्री अरविन्द घोष के आचार्यत्व में कलकत्ता में नेशनल कालिज की स्थापना हुई। १९११ में पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा में पले हुए श्री रास बिहारी घोष सदृश एक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति ने हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना का समर्थन करते हुए अपने देशवासियों की भावनाओं को बड़े प्रभावपूर्ण शब्दों में व्यक्त करते हुए कहा था—'हमारी शिक्षा का मूल आधार राष्ट्रिय भावनाओं तथा परंपराओं की गहराई तक पहुंचा हुआ होना चाहिये।..... हम एक प्राचीन सभ्यता के उत्तराधिकारी हैं। इस लिये हमारी शिक्षा का मुख्य कार्य उन आदर्शों के क्रमिक तथा अनवरत विकास को प्रोत्साहित करना है, जिन्होंने हमारी संस्कृति और तज्जन्य विविध प्रणालियों को एक निश्चित रूप दिया है।' यही विचार मद्रास में वार्षिक शिक्षा सम्मेलन के अध्यक्षपद से दिये गए भाषण में श्रीयुत एस. श्री निवास आयंगर द्वारा व्यक्त किये गए थे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की थी कि शिक्षित वर्ग की यह निश्चित धारणा है कि पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली निष्फल सिद्ध हुई है और इसका कारण हमारी शिक्षानीति का उत्तरदायित्व वहन करने वाले संचालकों की भारतीय मनोवृत्ति, इतिहास, साहित्य तथा धर्म के प्रति उपेक्षावृत्ति का है। इस लिये यदि उन्हीं दिनों कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर सर आशुतोष मुखर्जी ने द्वितीय ओरियन्टल कान्फ्रेंस में भाषण करते हुए अपने श्रोताओं के सम्मुख गर्व के साथ निम्न शब्द कहे थे तो वह उचित ही था। उन्होंने कहा था कि हमारा विश्वविद्यालय ही भारत में ऐसी सर्व प्रथम संस्था है जिसने प्राच्य विषयों के अध्ययन के गौरव को स्वीकार किया है और विद्यार्थियों को भारतीय लिपि विद्या, ललित कला, मूर्ति विद्या, वास्तु कला, भारतीय आर्थिक व सामाजिक जीवन, अंकगणित

शास्त्र, भारतीय जाति उद्गम प्रभृति विषयों का अध्ययन करने का अवसर प्रदान किया है।

इन सब दृष्टान्तों से स्पष्ट है कि किस प्रकार शिक्षा सम्बन्धी विचारों में परिवर्तन हो रहे थे और किस प्रकार पाश्चात्य शिक्षा दीक्षित विद्वान् भी उस प्राचीन भारतीय ज्ञाननिधि की गहराई में जाने के लिए स्वयं लालायित हो रहे थे, जिसका कुछ वर्ष पूर्व मैकाले ने तिरस्कार पूर्वक निराकरण कर दिया था। वस्तुत: वे सभी महापुरुष जिन्होंने गत अर्ध शताब्दी में हमारे विचारों तथा आदर्शों पर प्रभाव डाला है हमारे प्राचीन दर्शन तथा साहित्य से प्रेरणा पाते रहे हैं। ऋषि दयानन्द ने अपने देशवासियों को वेदों की ओर लौटने को कहा। महात्मा मुन्शीराम जी ने अपने गुरुकुल तथा श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने शान्ति निकेतन द्वारा हमें प्राचीन आश्रमों की संस्कृति की ओर उन्मुख किया। श्री तिलक, श्री अरविन्द घोष तथा महात्मा गान्धी ने अपने २ राजनैतिक क्षेत्र में भगवद्गीता से प्रेरणाये प्राप्त की हैं। स्वामी विवेकानन्द ने बिना किसी वर्ण या जाति का भेदभाव किये, अपने देशवासियों के मन को वेदान्त के महान् सत्य की ओर आकर्षित किया है। इसी प्रकार रामकृष्ण परमहंस ने सब धर्मों के समन्वय का उपदेश दिया, जो हमारे श्रुति प्रतिपादित धर्म का सार है।

भद्र पुरुषो!

अब हमने स्वाधीनता प्राप्त कर ली है और भावी योजनाएं निर्धारित करने में स्वतन्त्र हैं। शिक्षाविज्ञ अपना कार्य करते रहें, परन्तु हम सर्वसाधारण जनों को भी अपने शिक्षा के आदर्श के विषय में विचार करना चाहिए। हम अतीत काल की सफलताओं तथा असफलताओं से पूर्णतया परिचित हैं। इसे कहने की आवश्यकता नहीं कि हमें अपनी भूलों को दुहराना नहीं चाहिये और जो कुछ हमने उपलब्ध कर लिया है उसी तक सीमित रहना भी उचित नहीं। आज से कुछ वर्ष पूर्व श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने जो चेतावनी दी थी, उसे आज स्वाधीनता के युग में भी हमें भूलना नहीं चाहिये। उन्होंने कहा था कि किसी राष्ट्र को अन्य देश के आदर्श के अनुरूप—चाहे वह कितना ही सम्पन्न व उन्नत क्यों न हो—अपने इतिहास के निर्माण का निरर्थक *प्रयत्न नहीं करना चाहिए।*' यह ठीक है कि हमें समय के साथ २ चलते हुए वर्तमान जगत् की प्रगतिशील आवश्यकताओं के अनुकूल अपने आप को ढालना चाहिये। अवस्थानुसार अपने आप को ढालने तथा आत्मसात् करने की शक्ति के कारण ही हमारी संस्कृति ने अतीत काल में विलक्षण शक्ति तथा गौरव प्राप्त किया और जब कुछ ऐतिहासिक एवं राजनैतिक कारणों से वह आत्मसात् करने की शक्ति क्षीण हो गई तो हमारी वास्तविक उन्नति भी रुक गई। वर्तमान वैज्ञानिक युग के आविष्कारों ने देश तथा काल की दूरी को समाप्त कर दिया है और हम विश्व की समस्त सांस्कृतिक प्रगतियों के निकट सम्पर्क में आ गये हैं। हमें उनकी विशेषताओं का ग्रहण करना चाहिये। परन्तु जिस संस्कृति का हम निर्माण करें वह हमारा आंतरिक भाग हो तथा हमारी सभ्यता के आधारभूत तत्वों में गहराई तक प्रविष्ट और देश की प्रतिभा और आत्मा के अनुरूप हो। इस लिए शिक्षा में इस प्रकार के समन्वय की आवश्यकता है जो वर्तमान जगत् के हितकर तथा उपयोगी तत्वों का आत्मसात् कर सके, जिस में नवीन और प्राचीन तथा सांस्कृतिक एवं आर्थिक दोनों पहलुओं का सुन्दर सम्मिश्रण हो सके। इस गुरुकुल के संस्थापक महात्मा मुन्शीराम का भी यही उद्देश्य था। आज भी वर्तमान समाज की परिवर्तित अवस्थाओं के अनुसार उचित समंजन करते हुए उन आदर्शों पर दृढ़ रहना अत्यन्त हितकर है।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति की मुख्य विशेषता जाति

के बालकों के चरित्र निर्माण करने की है। निःसन्देह शिक्षा का प्रधान उद्देश्य चरित्र गठन है और उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए केवल बौद्धिक शिक्षा अपर्याप्त है। हर्बर्ट स्पेन्सर का यह कथन उचित है कि हम मनुष्य को जो लाभ पहुचाना चाहते हैं, वह उसे शिक्षा के माध्यम से पहुचाना चाहिये। क्योंकि शिक्षा बौद्धिक होने की अपेक्षा भावना प्रधान अधिक है।

जीवन का वास्तविक लाभ तो तब मिलता है जब शिक्षा के प्रताप से हम में ऐसी मानसिक अवस्था उत्पन्न हो जाती है जिस से हमारा आचार व्यवहार स्वाभाविक स्वयस्फूर्त और सहज हो जाता है। इस दृष्टि से गुरुकुल की शिक्षाविधि निःसन्देह अत्युत्तम है। नागरिक जीवन के दूषित प्रभावों से दूर रहना, उदात्त विचार, पवित्र चरित्र वाले व्यक्तियों का सम्पर्क, श्रद्धा, समादर, स्नेह और भ्रातृप्रेम द्वारा मानव की नैतिक शक्तियों को सुदृढ करना, मन और चरित्र का ऊर्ध्वीकरण आदि शुभकरी प्रवृत्तियों से ही सुसाध्य होता है।

आजकल आश्रमिक जीवन पद्धति के द्वारा शिक्षण की व्यवस्था को सर्वोत्तम माना जा रहा है। परन्तु आधुनिक रग ढंग पर जो आश्रमिक पद्धति (छात्रावास पद्धति) चल रही है वह बहुत व्ययसाध्य बन गई है। भारत जैसे गरीब देश में उस पद्धति का लाभ बहुत कम लोग ही उठा सकते हैं। ऐसी दशा में गुरुकुल की सरल और सादी जीवन प्रणाली को स्वीकार करके उसे विशाल पैमाने पर बढ़ाया जा सकता है। हमारी सरकार इस दिशा में क्या किया चाहती है यह मैं नहीं जानता। मुझे यही समुचित प्रतीत होता है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार गुरुकुल को भरपूर सहायता प्रदान करे। यह आवश्यक है कि इसे अपने राष्ट्रय जीवन की एक अति मूल्यवान् संपदा समझा जाय। बिना किसी बाह्य शासन और आदेश के इस को अपने ही ढंग पर अपना स्वतन्त्र विकास करने की छूट दी जाय। यह भी उचित है कि सस्था के संचालक अपने पाठ्यक्रम पर पुनर्विचार करके यदि उचित समझें तो आधुनिक युग के क्रियात्मक विषयों का समावेश करें जो आर्थिक दृष्टि से उपयोगी हों। मैं नहीं कह सकता कि इस प्रकार की शिक्षण-विधि को माध्यमिक विभाग की कक्षाओं तक, बड़े पैमाने पर चालू करना व्यावहारिक होगा या नहीं। परन्तु मेरा विचार है कि राज्य की सहायता से इस प्रकार की आदर्श शिक्षा संस्थाए, सर्वांश में नहीं तो कुछ अशों में, गुरुकुल शिक्षणविधि के मुख्य तत्त्वों को स्वीकार कर के अवश्य स्थापित होनी चाहिए।

मेरा विश्वास है कि आधारभूत बातों पर सहमत हो जाने पर इस प्रकार की शिक्षा विधि को परिचालित करना कुछ कठिन नहीं होगा। गुरुकुल में शिक्षा पाए हुए ऐसे युवक अच्छी मात्रा में मिल सकते हैं जिनकी सेवाओं के द्वारा देश में इस प्रकार के विद्यालय आयोजित किए जा सकें।

आज इस विद्या निकेतन से दीक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों के प्रति दो-चार शब्द कहना चाहता हूं। मित्रो! मैं आप को स्मरण कराना चाहता हूँ कि आप उदात्त और महान् परम्पराओं के उत्तराधिकारी हैं। आपके समक्ष उन निस्वार्थ, कर्तव्य परायण, पवित्र चेता, चरित्रों की परम्परा विद्यमान है जिनके द्वारा आपको समस्त जीवन मे प्राण, प्रेरणा और पथ-प्रदर्शकता प्राप्त होती रहेगी।

आर्य संस्कृति के उदात्ततम आदर्शों की छाया में आप ने इस शिक्षा निकेतन में जो शिक्षा प्राप्त की है उस से सुसज्जित हो कर आप को ससार में आगे बढ़ना और उस शिक्षा के प्रताप से आपने उन सब वस्तुओं को दूर भगाना है जिनके द्वारा मानव की आत्मा दूषित और अपवित्र बनती है। आपने अपनी शिक्षायें पुरातन ऋषियों की उस पवित्र होमाग्नि को प्राप्त किया

कस्मै देवाय हविषा विधेम

श्री पूर्णचन्द्र विद्यालंकार

प्रधान जी, मुख्याधिष्ठाता जी, आचार्य जी,

मैं आपकी आज्ञा से पुराने स्नातक भाइयों की ओर से नवीन स्नातकों का अपने हृदय के अन्तरतम से स्वागत करना चाहता हूं।

मेरे भाइयो,

आज वैशाखी का पुण्य पर्व है सौर पद्धति से आज वर्ष का प्रारम्भिक दिवस है। जलियानवाला बाग के शहीद आज अपनी याद ताजा करा रहे हैं।

आपका यह भाग्य है कि आप ऐसे पुण्य दिन कुलमाता से विदाई लेकर कर्मक्षेत्र के प्रांगण में जा रहे हैं। मैं इस नए क्षेत्र में आपका स्वागत करता हूं।

आज अर्थयुग है। पैसे के नीचे मानव कुचला जा रहा है। मैं अपने रोम-रोम से इसका विरोध करना चाहता हूं।

पर समय सदा ऐसा नहीं रहेगा। शीघ्र ही असत्य पर सत्य की विजय होगी, हिंसा पर अहिंसा की विजय होगी, मृत्यु पर अमरत्व की विजय होगी, अन्धकार पर प्रकाश की विजय होगी, अर्थ पर मानवता की विजय होगी। मैं इन विजयों में सम्मिलित होने के लिए आपका स्वागत करता हूँ।

आपने अपनी दैनिक प्रार्थनाओं में अपने से बारम्बार यह प्रश्न किया है और संभवतः इसका जवाब भी पा लिया होगा—'कस्मै देवाय हविषा विधेम,' हम किसे अपने को समर्पित करें। यदि आप ने इसका जवाब न पाया हो तो आइए मैं आपको निमन्त्रित करता हूँ कि आप परमात्मा के लिए अपने को समर्पित कीजिए, आप सत्य के लिए अपने को समर्पित कीजिए, अपने देश के लिए अपने को समर्पित कीजिए, ज्ञान के लिए अपने को समर्पित कीजिए, कुल माता के लिए अपने को समर्पित कीजिए और इस देव-समाज के लिए अपने को समर्पित कीजिए जिसने अपने पसीने से इस संस्था को इतना बड़ा किया है। स्मरण रखिए बूंद समुद्र के लिए अपने को समर्पित कर अपने को समुद्र जैसा महान् बना लेती है। आप भी जितने महान् लक्ष्य के लिए अपने को समर्पित कर देंगे उतने ही महान् बन जावेंगे।

एक समय था जब जड़ जगत् पर चैतन्य की विजय का प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भ में अन्नमय कोष ने जड़ जगत् पर विजय प्राप्त की। फिर समय आया जब प्राणमयकोष ने अन्नमय कोष पर विजय प्राप्त की, अब मनोमय कोष ने प्राणमय कोष पर विजय प्राप्त कर ली है। भाइयो, शीघ्र ही अन्नमय कोष पर विज्ञानमय कोष विजय प्राप्त करेगा। सम्भवतः वह इस प्रक्रिया की यह अन्तिम सीढ़ी होगी। इस विजय में भगवान् भारत माता को अपना निमित्त बनाएगा। यदि आप अपने को सही तौर पर समर्पित करेंगे तो विश्वास रखिए, आप इस महान् विजय में साझी बन सकेंगे, परमात्मा करे कि हम अपने देश तथा मानवता के लिए स्वयं अपने लिए कल्याणकारी बन सकें।

अन्त में मैं एक बार फिर अपने हृदय की अत्यधिक गहराई के साथ आपका स्वागत करता हूं।

★

है जो समस्त मलिनता को भस्म कर के इस विश्व में आप को समृद्धि प्रदान कर के परलोक में मुक्ति का आनन्द दे सकेगी।

श्रद्धा और भक्ति के साथ इस पवित्र ज्ञानाग्नि को प्रबुद्ध और सुरक्षित रखिए, जिस प्रकार पुराने याज्ञिक लोगों ने इसे सुरक्षित रखा था। आप देखेंगे कि कल्याण और मांगल्य आपके साथ है।

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के ५२ वें वार्षिक महोत्सव के अवसर पर १ वैशाख २००६ को पढ़ा गया दीक्षान्त भाषण।]

★

वेदों का महत्व और हमारा कर्तव्य

श्री नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ

"सर्वे धर्मे प्रतिष्ठितम्"
"धर्मो वेदे प्रतिष्ठितः"

यो जागार तमृचः कामयन्ते ।
यो जागार तमु सामानि यन्ति ॥
यो जागार तमय सोम आह ।
तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥
(ऋ० १—४४—१४)

अग्निर्जागार तमृचः कामयन्ते ।
अग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ॥
अग्निर्जागार तमयं सोम आह ।
तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥
(ऋ० १—४४—१४)

जो जागता रहेगा ऋग्वेद उसी की कामना करते रहेंगे। जो जागता रहेगा उसी के पास साम आयेंगे। जो जागता रहेगा उसी के पास सोम आकर कहेगा कि मै तेरा हूँ, मैं तेरे साथ ही नाता-मित्रता रक्खूँगा, मै तेरे ही पास रहूँगा।

अग्नि जागता रहा, ऋग्वेद उसकी कामना करते रहते हैं। अग्नि जागता रहा सोम ने आकर उससे कहा अथवा सोम उसके पास आकर कहता रहा कि मैं तेरा हूं, मै तेरे साथ ही नाता-मित्रता रक्खूँगा, मैं तेरा हू और तेरे ही पास रहूगा।

इन दोनों मन्त्रों से स्पष्ट है कि वेदों से मित्रता गाठनी हो तो जागते रहना पड़ेगा। यहां जागने का क्या अभिप्राय है? साधारण मनुष्य के जागने सोने की व्याख्या और ही है। योगी के जागने सोने की व्याख्या भी भिन्न है। यहां तो ध्यान योग में प्रवृत्त होकर त्याग-तपस्या द्वारा प्रातिभज्ञान की प्राप्ति के प्रयत्नों का अर्थ ही जागरण है। वह प्रातिभज्ञान ही सोम है जो आकर कहता है कि"मैं तेरा ही मित्र हूँ मैं तेरे साथ ही रहूगा इत्यादि साधरण मनुष्य की दृष्टि से जो वेदों का ज्ञान होता है अथवा प्रातिभ-ज्ञान प्राप्त व्यक्ति को जो वेदों का ज्ञान होता है इन दोनों मे बड़ा अन्तर है—

हृदा तुष्टेषु मनसा जवेषु ।
यद् ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः ॥
अत्राह त्वे विजहुर्वेद्याभिः ।
ओह ब्रह्माणो विचरन्त्युत्वे ॥
(ऋ० १०-११-८)

इस की व्याख्या करते हुए निरुक्तकार लिखते हैं—
"सेयं विद्या श्रुतिमतिबुद्धिलक्षणा ।
तस्यास्तपसा पारमीप्सितव्यम् ॥"

अर्थात् इस वेद विद्या का पार पाना हो तो तप से ही सम्भव है।

इसके साथ ही गम्भीर वेदतत्व को अवगत करना हो तो गुरु कृपा भी आवश्यक है।

यस्य देवे पराभक्तिः ।
यथा देवे तथा गुरुः ॥
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः ।
प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

गुरु कृपा के बिना वेदार्थ तत्व-ज्ञान असम्भव ही है—

इस के अतिरिक्त भावशुद्धि की भी अपेक्षा है; भावशुद्धि, गुरुभक्ति, गुरु शुश्रूषा, त्याग-तपस्या पूर्वक ही वेदाध्ययन सफल हो सकता है। मनु ने स्पष्ट कहा है कि—

वेदास्त्यागाश्च यज्ञाश्च ।
नियमाश्च तपांसि च ॥
न विप्रदुष्टभावस्य ।
सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥

दूषितभावयुक्त गुरुशिष्य हो तो न तो वेद, न त्याग, न यज्ञ, न नियम, न तप, कोई भी तो सिद्ध नहीं हो

सकता—

इस दृष्टि से विचार किया जाय तो मन में प्रश्न उठते हैं कि आर्य समाज में कहीं गुरुशिष्यभावपूर्वक, त्यागतपस्यापूर्वक वेदों का अध्ययन–अध्यापन हो रहा है कि नहीं? यह भी प्रश्न उठता है कि आर्यसमाज में जितने वेदज्ञ हैं अथवा वेदज्ञ-ब्रुव हैं, इन में से कितनों ने यथार्थ रूप में गुरु मुख से वेदाध्ययन किया है? अथवा केवल न्यूनाधिक रूप में संस्कृत ज्ञान के बल पर वेदों के पीछे पड़े हैं और वेदों को अपने स्वरूप को खोल कर दिखाने का अनुरोध अथवा हठ कर रहे हैं। क्या वे यह समझ रहे हैं कि त्याग–तपस्या के बिना, भाव शुद्धि के बिना, गुरु कृपा एवं गुरुसेवा के बिना, श्रद्धा के बिना वेद अपना यथार्थरूप प्रकट कर देंगे? क्या हम लोग यह समझ बैठे हैं कि हम जो अल्प-स्वल्प प्रयत्न कर रहे हैं इतने ही से हम संसार के उपकार करने में समर्थ हो सकेंगे?— ये बातें गंभीरता-पूर्वक विचार करने योग्य हैं।

आर्यसमाज के प्राण हैं वेद। वेद हैं, रहेंगे तो आर्यसमाज भी रहेगा। यदि वेदों से सम्पर्क छूटा, उन में अनास्था हुई, नास्तिक बुद्धि आयी कि आर्यसमाज गया ही समझिए। इस लिए वेद-शास्त्रों के विषय में गत ६० वर्षों में हमको जो अनुभव मिले हैं उन से हम कह सकते हैं कि वेदों की वाचिक रूप में महत्ता बढ़ाने में, वेदों के विषय में महानाद करने में, वेदों की ओर संसार का ध्यान खेंचने में तो हम अग्रसर ही रहे हैं परन्तु कार्यरूप में हमारी इतनी प्रगति नहीं हुई है कि जिस पर हम गौरव कर सकें। वेदों को वेदों की दृष्टि से देखने और उसके यथार्थ स्वरूप को जानने की कला को हम सर्वथा भूल गये हैं। इस कटु सत्य को हम को मानना चाहिए कि अभी हमारा वेदों में यथारीति प्रवेश भी नहीं हुआ है, और हम वेदरूपी भव्यभवनों के द्वार पर ही अटक गये हैं और बाहर ही बाहर चारों ओर अवश्य ही घूम रहे हैं।

इधर तो आर्यजगत् की यह दशा उधर जिनके वंशों में परम्परागत वेदाध्ययन होता रहता था, वे वंश भी नष्ट होते जा रहे हैं। जो थोड़े से बचे हैं, उन वंशों के नवयुवक भी अपनी परिपाटी को छोड़कर नयी शिक्षा-दीक्षा में रंगते जा रहे हैं, परम्पराएं नष्ट होती जा रही हैं। अब यह दशा है कि—

थोड़े से ऋग्वेदी ब्राह्मण प्रायः महाराष्ट्र तथा दक्षिण में अधिकता से मिलेंगे। शुक्ल यजुर्वेदी प्रायः उत्तर भारत में हैं, बंगाल में भी। सामवेदी गुजरात में इने-गिने बचे हैं। प्रायः राजस्थान के श्री माली ब्राह्मणों में सामवेदी मिलेंगे। बंगाल में भी दो-एक घराने हैं। अथर्ववेदी ब्राह्मणों के ३-४ वंश बचे हैं समस्त भारत में। सुना है तीन बम्बई में ही हैं। कृष्ण यजुर्वेदी मध्य प्रदेश तथा कर्नाटक में मिलेंगे। तैलंगाना में भी यत्र-तत्र हैं। पर इन लोगों में प्रायः परम्परागत वेद एवं उनकी शाखा एवं याज्ञिय पद्धतियों का ही संचालन रहा है। अर्थज्ञान पूर्वक वेद अथवा वेद शाखाओं के अध्ययन की ओर किसी की भी प्रवृत्ति नहीं है।

वेदोद्धार कैसे हो?

पाश्चात्य संस्कृतज्ञ विद्वान् तथा उनके पद-पद्धति पर चलने वाले यहां के पाश्चात्य शिक्षा में लालित-पालित-पोषित-परिवर्द्धित विद्वान् एक निराली ही पद्धति का अवलम्बन करके वेदार्थ के स्वरूप को विकृत करने में संलग्न है। इनका निरुक्त, इनकी भाष्य करने की शैली विचित्र ही है। ये वैदिक शब्दों की लैटिन धातुओं द्वारा तोड़-फोड़ करते रहते हैं—हमारी वेद-वेदाङ्ग पद्धति को नहीं अपनाते। वेदों में इतिहास आदि का विचित्र रूप में दिग्दर्शन कराते रहते हैं। इनकी पद्धति हमारे काम की नहीं। आर्यसमाज उनकी इस वेदों को विकृत करने की पद्धति को कदापि

स्वीकार नहीं करेगा। इस वर्तमान विज्ञान युग में यह भी विचारणीय है कि हम इस पाश्चात्य विज्ञान की ओर जायेंगे कि वह पाश्चात्य विज्ञान ही हमारे वैदिक विज्ञान की ओर झुकेगा। हमारी तो यह प्रतिज्ञा है कि वेद में जो कुछ है उसी की आभा सर्वत्र है 'यदिहास्ति तदन्यत्र, यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्'।

विदेशी सम्पर्क तथा विदेशी शासन काल में हमारे भारत की वैदिकी की परम्परा ने किसी प्रकार वेद वेदांगों की रक्षा की थी। बीच के व्यामोह काल में भी किसी प्रकार वेदादि सुरक्षित रहे। और हमारी पूर्वजों की परम्परा ने ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्चेति' इस महाभाष्य के वचनानुसार निष्कारण धर्म पालन द्वारा वेद शास्त्र परम्परा की रक्षा की। जो वेद परम्परा क्रूर यवन काल में भी किसी प्रकार बची रही थी वह परम्परा गौराङ्ग महाप्रभुओं के काल में अधमरी हो गई और यह मानना ही पड़ेगा कि यदि स्वामी दयानन्द न आते अथवा न होते तो यह परम्परा सर्वथा निःशेष हो जाती। स्वामी दयानन्द ने अनुभव किया कि यह भारतवर्ष यदि जीवित रह सकता है तो वह वेदाश्रय से ही रह सकता है, इस का धर्म इस की संस्कृति इसी के आश्रय से बच सकती है। उन का हम पर बड़ा ऋण है, हम इस ऋण से उऋण हो सकेंगे कि नहीं यह समय ही बतलायेगा।

वेदों की महत्ता

वेदों की महत्ता के विषय में हम क्या हैं? मनु भगवान् स्वयं कहते हैं—

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोका ।
चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ॥
भूतं भव्यं भविष्यं च ।
सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति ॥

सैनापत्यं च राज्यं च ।
दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च ।
वेदशास्त्रविदर्हति ॥ (अध्याय १२)

वैदिक वर्णाश्रम धर्म की महत्ता को समझना हो, तीनों लोकों का ज्ञान जानना हो, भूत-वर्तमान तथा भविष्य का ज्ञान प्राप्त करना हो तो यह सब कुछ वेदों से ही भली भांति जाना जा सकेगा।

वेदज्ञ पुरुष सेनापति बन सकता है, राज्य-शकट चला सकता है, न्यायाधीश बन सकता है, समस्त लोकों का अधिपति हो सकता है।

या तो हम इन वाक्यों में श्रद्धा नहीं रखते अथवा हम इतने अनध्यवसायिक हो रहे हैं कि हम कुछ नहीं कर सकते। या तो हम 'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना-सुनाना आर्यों का परम धर्म है" इस परम धर्म को समझे ही नहीं अथवा समझे हैं तो तदनुरूप श्रद्धा, त्याग, तपस्या नहीं। कोई बात तो अवश्य है ही।

जिन वेदों का महत्त्व को स्वयं वेद अपने सुन्दर शब्दों में प्रकट करते हैं। ब्राह्मण, अनुब्राह्मण आरण्यक उपनिषद् समस्त शास्त्र समस्त इतिहास पुराणादि एक स्वर से जिन की महिमा का गान हैं, उस वेद पुरुष की महिमा को दिग्-दिगन्तरों में प्रसारित करने के लिए ही तो आर्यसमाज की स्थापना हुई थी, ऐसा प्रतीत होता है। दर्शनों का आनन्द दर्शनानन्द के साथ गया और श्रद्धा का आनन्द श्रद्धानन्द के साथ गया। इसी लिए तो गुरुकुलों की स्थापना हुई हैं किन्तु श्रद्धा के न होने से ही हम मर रहे हैं—

जब गुरुकुलों के अधिकारी एवं ब्रह्मचारी निष्कारण धर्म की महत्ता को समझ कर तप त्याग-पूर्वक वेदाध्ययन करेंगे तभी आर्यसमाज का उद्देश्य

सफल हुआ समझिए। यदि हम अल्पश्रुत ही बने रहेंगे तो वेद हम से डरते रहेंगे क्योंकि—

'बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति'

वेद अल्पश्रुतों से डरते रहते हैं, इस लिए कि इन अल्पश्रुतों के हाथों में पड़ कर कहीं हमारा नाश न हो जाय, वेदों को अनुचित रीति से तरोड़-मरोड़ने से हो तो वेद विकृत हो जाते हैं। इसलिए अब यह दशा है कि हम वेदों से डरते हैं और वेद हम से डर रहे हैं।

वेद हम से इसलिए डरते हैं कि हम निष्कारण धर्म के तत्व को नहीं समझ रहे हैं। हम वेदों से इस लिए डर रहे हैं कि मानने लगे हैं कि वेद हमें रोटी नहीं दे सकता।

वेदों के विषय में ऐसा पाठ्यक्रम रहना चाहिये कि प्रति १० वर्ष पीछे ४०—५० वेद तत्वज्ञ समाज को मिलते रहें। पर हम को तो पेट पूजा की चिन्ता पड़ रही है। इस अनन्त उदरदरी को भरने की चिन्ता हम को मारे डाल रही है।

सपदि विलयमेतु राज्यलक्ष्मीः।
उपरिपतन्त्वथवा कृपाणधाराः॥
परिहरतुतरां शिरः कृतान्तो।

मम तु मतिर्नमनागपैतुधर्मात्॥ इस तत्व का ध्यान नहीं। पेट का प्रश्न हमारे सम्मुख विकराल रूप धारण कर के खड़ा हुआ है।

एक गुरुकुल के उच्च कोटि के स्नातक (जो कि वेदों में अच्छी प्रगति रखते हैं) मुझ से मिले और बोले कि मुझे ३५०) की नौकरी एक मिल में मिल रही है, मैं वहीं जाने की चिन्ता में हूं। मुझे आश्चर्य हुआ, मैंने उन से पूछा कि ऐसा क्यों कर रहे हो तो उत्तर मिला कि जब वेद रूपी गौ ने दुग्ध देना छोड़ दिया है तब मैं क्या करूं। किसी प्रकार कुटुम्ब पोषण तो करना ही है। अवश्य ही यह बात विचारणीय है साथ यह दयनीय भी है। यह तो हुई एक स्नातक की बात। इसी प्रकार के विचार कितने स्नातकों के मन में न उठते होंगे।

वस्तुतः हमारी विचारधारा ही परिवर्तित होती जा रही है—देश की परिस्थिति ही बदलती जा रही है। वेदों की रक्षा की बात तो दूर रही, संस्कृत विद्या भी अपने स्वरूप में स्थित रहेगी कि नहीं यही एक चिन्ता का विषय हो बैठा है।

आर्यसमाज के शिक्षणालयों को चाहिए कि अपने यहां एक ऐसा वेद विभाग खोलें जिस में वेदाध्यायी ब्रह्मचारियों के लिए पूरी पूरी व्यवस्था हो और इतनी अच्छी व्यवस्था हो कि वेदाध्यायी समस्त चिन्ताओं से मुक्त हो कर जीवन भर उसी पवित्र कार्य में जुटे रहें और समझ लें कि यही हमारा जीवनोद्देश्य है और 'इहासने शुष्यतु मे शरीरम्'—अर्थात् इसी आसन पर बैठे बैठे मेरा शरीर भले ही सूख जाय मैं इसी में जीवन को व्यतीत करूंगा। प्रति वर्ष ऐसे दस-दस बीस-बीस छात्र प्रविष्ट हों और दस वर्ष के पश्चात् भी इन में से दो-दो चार-चार आस्तिक, श्रद्धालु वेदज्ञ निकलते रहे तो भी हमारे शिक्षणालय सफल समझिए।

यदि हम और हमारा प्रिय समाज मृत्यु से तरना चाहते हैं तो हम को अथर्ववेद के मृत्युतरण सूक्त का अध्ययन करना होगा—उस आनन्द को जानना होगा जिस से मृत्यु से बच सकते हैं। अथर्ववेद चतुर्थ काण्ड सूक्त ३५-४ को ध्यानपूर्वक पढ़िए।

'तेनौदनेनातितराणि मृत्युम्'—इन छह मन्त्रों को पढ़िये। अत्यन्त सुन्दर भावभरित मन्त्र हैं।

लगभग २०० वर्ष हुए हमारे पूर्वज ऋग्वेद का ही अध्ययनाध्यापन करते थे। किन्तु कालवशात् हमारे पूर्वज निजामशाही में नौकरी करने पर विवश हुए। वेद की परम्परा छूटी, नौकरी की परम्परा चली—तब

से वह परम्परा बिगड़ी। वैसे हम ऋग्वेदी ब्राह्मण हैं, हमारी संहिता है आश्वलायन। हमारा श्रौतसूत्र है आश्वलायन श्रौतसूत्र। हमारा गृह्यसूत्र आश्वलायन सूत्र गृह्य। हमारा ब्राह्मण है ऐतरेय. हमारी उपनिषद् है ऐतरेयोपनिषद्। हमारा आरण्यक है ऐतरेयारण्यक। हमारा गोत्र है श्रीवत्स, हमारे पञ्च प्रवर हैं। १-आप्लव, २-औद्व, ३-जामदग्न्य, ४-च्यवन, ५-पाराशर। यह हमारी परम्परा है। उन में मेरे गुरु कृष्णाचार्य ने मुझ से यह सब कण्ठस्थ कराया था। उपनयन के पश्चात् मेरे काशी जाने का अभिनय भी मैंने देखा था। ब्रह्मचारी रूप में आर्यसमाज की ही कृपा हुई कि हम आस्तिक बने रहे, शास्त्री बने, वेदतीर्थ हुए और ऋग्वेदी कहलाने योग्य हुए। जब हम ने ऋग्वेद में परीक्षा दी थी १९०६ में तब हम अकेले ही इस विषय के परीक्षार्थी थे समस्त भारत में। स्वर्गीय पं० भक्तराम शास्त्री (डा० ए० वी० कालेज के) यजुर्वेद में थे। अब तो आर्यसमाज में अनेक वेदतीर्थ उपाधिधारी हो गये हैं। इस परीक्षा के निमित्त से हम स्वर्गीय आचार्य सत्यव्रत सामश्रयी, फैलो एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बेंगाल तथा कलकत्ता युनिवर्सिटी के लेक्चरार के शिष्य बने। 'शास्त्री' होने पर भी हम को फिर गुरुमुख से निरुक्त (सांगोपान्त) पढ़ना पड़ा। ऋग्वेद सम्बन्धी सभी पुस्तकों का अध्ययन करना पड़ा, तब हम जान सके कि यह वेदविज्ञान कितना विस्तृत है। यदि हम इसी अध्ययन को स्वाध्याय द्वारा परिपक्व करते रहते तो हम अपना तथा समाज का बहुत बड़ा उपकार कर सकते थे, वह कर न सके इस का हम को खेद है वह क्यों, यह मत पूछिए। 'व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ति। रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहं। आयुः स्रवतिभिन्नघटादिवाम्भो'—यह दशा है। इस छाया पश्चिम अवस्था में कुछ हो भी नहीं सकता। किन्तु हम यह अवश्य चाहते हैं कि भगवान् गुरुकुलों के ब्रह्मचारियों को बल देवे जिस से वे आर्यसमाज की कमी को पूरा करें—आर्यसमाज का भूत महान रहा है, वर्तमान ढीला चल रहा है किन्तु भविष्य भी महान् हो यही हमारी हार्दिक अभिलाषा है।

आप के गुरुकुल में वेदानुसन्धान का काम हो रहा है, कतिपय विद्वान् स्वाध्यायशील रह कर वेद विषय में ग्रन्थ निर्माण करते रहते हैं यह प्रसन्नता की बात है। इस विषय में श्री रामनाथ जी, आचार्य श्री प्रियव्रत जी, श्री भगवद्दत्त जी का नाम उल्लेख योग्य है। आप के भूतपूर्व आचार्य देवशर्मा जी ने भी अच्छी अच्छी पुस्तकें लिखी हैं, मैं यह सब कुछ इस गुरुकुल को अपना गुरुकुल समझ कर ही लिख रहा हूं। इस गुरुकुल का बड़ा नाम है। धाक भी बड़ी है। इस के सुयश को चिरकाल तक सुरक्षित रखने का समुद्योग होना चाहिये।

मैं चाहता हूँ कि इस गुरुकुल द्वारा वेदों शास्त्रों का अधिक से अधिक प्रचार तथा प्रसार हो। आशा है गुरुकुलों से सम्बन्ध रखने वाले सभी लोग गम्भीरता पूर्वक विचार करेंगे। आप लोगों ने, यहां के आचार्यादि ने मुझे अपने विचारों को प्रकट करने का यह अवसर दिया है इस शुभ महोत्सव पर। यह क्यों न समझ लीजिए कि मैं इस व्यासपीठ से समस्त आर्यसामाजिक गुरुकुलों के लिए ही बोल रहा हूँ।

इस अवसर पर एक आंग्ल महाकवि की मार्मिक कविता का भाव सम्मुख आता है—वह स्थान कहां है जहां से कि हमारा जहाज चल पड़ा था—वह तो बहुत दूर पीछे रह गया, वह तो बहुत दूर पीछे रह गया।

वह उद्दिष्ट स्थल आगे कितनी दूर है जहां कि हमें पहुँचना है—वह उद्दिष्ट स्थल भी बहुत दूर आगे

उत्तिष्ठत जाग्रत

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर

उत्तिष्ठत, जाग्रत! उठो, जागो! प्रभात में ईश्वर का प्रकाश आकर हमारी ऊंघ को उड़ा देता है। समस्त रात्रि की गहरी निद्रा एक पल में चली जाती है। परन्तु सन्ध्या वेला के उस मोह को कौन भगायेगा? समस्त दिवस के विचारों और कर्मों से हमारे चहुँ ओर जो एक प्रकार की धूमिलता छा जाती है, उस से मुक्त हो कर चित्त को निर्मल और उदार शांति में किस प्रकार स्थापित करेंगे? इतना बड़ा दिवस एक मकड़ी की तरह अपना जाल विस्तृत करता हुआ, हमें चारों ओर से फंसा रहा है! चिरन्तन को भूना कर अपनी छाया द्वारा आवृत कर रहा है। इस समस्त जाल के विस्तार को तोड़ कर के, हमें अपनी चेतना को सजग करना चाहिए। सब के उठने का, जागने का समय हो गया है

जिस समय दिवस अनेक कर्मों, विविध विचारों और नाना प्रकृतियों द्वारा हमें चक्र पर चढ़ा रहा होता है, जब वह निखिल विश्व और हमारे आत्मा के बीच में एक प्रकार का आवरण खड़ा कर देता है तब यदि हम अपनी चेतना को बारम्बार 'उत्तिष्ठत, जाग्रत' कह कर के उद्‌बोधित न करें, यदि इस जागरण के मन्त्र को, व्यावहारिक कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी प्रतिपल अपने अन्तरात्मा से ध्वनित न करें तो फिर एक के बाद दूसरे चक्कर में, एक के बाद दूसरे जाल में हम अवश्य फंस जायेंगे। फिर तो उस तमस् में से, उस जड़ता में से, बाहर निकलने की इच्छा तक हम में नहीं जागेगी। फलतः आसपास की परिस्थिति को हम अत्यन्त सत्य रूप में मान लेंगे और उस से भी परे जो उन्मुक्त, विशुद्ध और शाश्वत सत्य विद्यमान है, उस के प्रति हमारा विश्वास नहीं रहेगा। और सब से विचित्र बात तो यह होगी कि उस सत्य के प्रति संशय अनुभव करने जितनी सजगता भी हम में से निकल जायगी। इस लिए जब समस्त दिवस के अनेक विश्व कर्मों का कोलाहल मच रहा हो, तब अपने मन की गम्भीरता में 'उठो, जागो' की ध्वनि अस्खलित रूप में उठती रहे, यही प्रार्थना है!!

है, वह बहुत दूर आगे है, वह बहुत दूर आगे है।

ईश्वर की कृपा से हम उद्दिष्ट स्थान पर पहुँच सकें—तथाऽस्तु, एवमस्तु सर्वथा सर्वतो मंगलं विभायत् मंगलेशः।

[गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के ५२ वें वार्षिक महोत्सव के अवसर पर वेद सम्मेलन में दिये गये श्री नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ के भाषण का सार]

★

लेखन एवं मुद्रण में अशुद्धियां और नागरी लिपि में सुधार

श्री चन्द्रकिशोर शर्मा

व्यञ्जन और संयुक्ताक्षर

जिस प्रकार मात्रादि चिन्हों का अक्षर के ऊपर, नीचे, दाये, बाये, लगना दोषपूर्ण है उसी प्रकार व्यञ्जनों में युक्ताक्षरों के अवयव ऊपर नीचे और ज्यों त्यों कर के लिखा जाना भी एक अनुपेक्षणीय दोष है। इस से भी कई प्रकार की असुविधायें होती हैं इस कारण बहुत से युक्ताक्षर विकृत रूप लेते हैं और कई एक निराले ही बनते हैं। क्ष त्र ज्ञ तो अब वर्ण माला का अंग ही माने जाने लगे हैं और व्यञ्जनों की संख्या ३६ बतलाई जाने लगी है, यदि यह क्रम नहीं रोका गया तो अन्देशा हो सकता है कि क्त, द्य, श्र आदि युक्ताक्षर भी आगे-आगे वर्णमाला में सम्मिलित न हो जाय, क्योंकि अक्षरों की तरह ही उन के रूप आकारादि भी सीखने और याद रखने की आवश्यकता होती है।

दूसरी बात यह कि नागरी अक्षर पहले ही घूम मरोड़ वाले काफी घने हैं पर जब उन के द्वारा युक्ताक्षर बनाये जाते हैं और मात्रादि चिन्हों का संयोग भी आ पड़ता है तो वे चारों ओर से लद कर बहुत घने हो जाते हैं और नेत्रों पर विशेष भार तथा खिचाव डालते हैं। अल्प शिक्षित और नव सिखुए विकट युक्ताक्षरों में बहुधा चक्कर खाते हैं और स्कूलों के विद्यार्थी दुविधाओं वश अक्षरी (स्पेलिंग) वर्णन करने में उलझ जाते हैं तथा प्रश्न-पत्रों के उत्तर लिखने में अनेक प्रकार की भद्दी अशुद्धियां कर जाते हैं। इस के अतिरिक्त कुछ अक्षरों के आकार भ्रामक एवं असुविधाजनक भी हैं। युक्ताक्षरों को ठीक प्रकार न समझ सकने के कारण ही प्रायः पठन, लेखन एवं मुद्रण में अशुद्धियां हो जाती हैं। हमारी लिपि की दुरूहता और मुद्रण के टाइपों की संख्या बढ़ाने में यह दूसरा कारण है और उस के सुविधा-पूर्वक यन्त्र सुलभ न होने देने में भारी रोड़ा है।

ङ छ ट ठ ड ढ द र ह—नौ व्यञ्जन नागरी में ऐसे हैं जिन के अन्त में पाई नहीं है। मुख्यतः इन्हीं की बनावट के कारण इन से बनने वाले युक्ताक्षरों के अवयव ऊपर नीचे कर के संयुक्त लिखने पड़ते हैं—अन्यथा शब्दों में जब निःस्वर दिखाने या संयुक्त होने का भाव व्यक्त करना होता है और टाइप केसों में बना-बनाया संयुक्ताक्षर नहीं मिलता है तो इन में हल चिह्न का प्रयोग होता है। क्योंकि अन्य अक्षरों के अर्द्धकों की भांति इस के अर्द्धक नहीं बन सकते और न अब तक निश्चित ही किये गये हैं। लिखने छापने में बार-बार अथवा किसी-किसी के सुझाव के अनुसार सर्वत्र हल हल् चिह्न का प्रयोग पठन में अटक और विलम्ब का कारण बनता है और लेखन में समय और स्थान भी अधिक चाहता है। आगे चल कर इस के द्वारा किन्हीं शब्दों के उच्चारण विकृत भी हो जाय तो कुछ ताज्जुब नहीं। ऐसी कतिपय लिपियां, जिन में युक्ताक्षर बहुत कम या बिल्कुल नहीं बनते अथवा हल् से लिखे जाते हैं, इस बात को पुष्ट करती हैं। क्योंकि दो या तीन अक्षरों की युक्ताक्षर तो अक्सर काम आते हैं परन्तु कभी-कभी ४ अक्षरों के संयोग का अवसर भी आ जाता है, यथा—सन्ष्ट्या, दारिद्र्य, अर्द्ध्व आदि। यद्यपि बने-बनाये युक्ताक्षर ढलते तो अन्य अक्षरों के भी हैं किन्तु इन नौ से बनने वाले तो अवश्य ही ढालने पड़ते हैं। मुद्रण के टाइपों की संख्या इसी तरह बढ़ी हुई है। र का एक अन्य रूप (्र) जो ट्र

ड्र आदि में लगता है और य का एक विकृत रूप (य) जो नाट्य, ड्योढ़ा आदि में काम आता है इन्हीं नौ के कारण बनाना पड़ा है।

विकृत एव निराले युक्ताक्षरों के द्वारा कुछ और भी भ्रम होते हैं। कभी-कभी अन्य प्रकार से शुद्ध लिखे को अशुद्ध समझ लिया जाता है। जबकि नियत युक्ताक्षरों से भिन्न अन्य प्रकार क्त को क्त, द्य को द्य, श्र को श्र आदि लिख दिया जाता है। क्योंकि क्+त= क्त, द्+य=द्य, श्+र=श्र बनना सिखलाया जाता है। अतः उसके अनुसार क्त द्य श्र आदि को ही शुद्ध समझा जाता है अन्य प्रकार लिखे को नहीं। (परन्तु अब यह भावना धीरे-धीरे कम होती जा रही है) एक और बात, ऊपर नीचे सयुक्त लिखे जाने के कारण युक्ताक्षरों मे अन्य विकृताक्षरा और खण्डाक्षर' का अर्द्ध समझ लेने की मिथ्या धारणा भी बन रही है जबकि कहने सुना जाता है कि 'प्र में आधा र लगाओ.' 'द्ध में आधा ध जोड़ा,' 'ख्य मे आधा य मिलाओ,' 'ह्न में आधी न लिखा' आदि-आदि। ऊपर नीचे सयुक्त करने के दोष क कारण कभी कभी कम्पोजिङ्ग मे अड़-चन भी पड़ जाती है और शब्द ठीक प्रकार बन नहीं पाते, जबकि किसी अक्षर मे कोई अक्षर और मात्रादि चिन्ह ऊपर भी लगते हो और नीचे का भी दो-दो तीन-तीन चिन्ह एक साथ हो आ जाते हो। अर्द्ध का अर्ध कदाचित इसी कठिनाई के कारण हो रहा है। सस्कृत की एक पाठ्य पुस्तक में 'ऊर्द्ध्व' छपा देखने में आया है उस में रेफ का चिन्ह द् के बजाय व पर लगा है यह भी उल्लिखित अड़चन का एक प्रमाण है। इस शब्द में अन्तिम चारो अक्षरों के सयुक्त होने का अवसर है यदि वे ठीक प्रकार सयुक्त कर के लिखे जाय तो द्ध में ऊपर रेफ और नीचे व लगना चाहिये। परन्तु बिना स्पेशल टाइप बनवाये हुए मुद्रण में सरलता पूर्वक यह सम्भव नहीं है, क्योंकि ऐसे युक्ताक्षर तो कभी-कभी ही काम आते हैं और टाइप फाण्ट में साधारणतः नहीं मिलते हैं इस कारण किन्हीं शब्दों के रूप बदल जाते हैं। उक्त शब्द हिन्दी मे उर्ध्व शायद इसी कारण हो गया है। 'दारिद्र्य' शब्द छः प्रकार से लिखा जा सकता (इस का एक प्रकार तो साधारण टाइपों से छपना असम्भव ही है) एक जगह यह शब्द दारिद्र छपा मिला है बस अब यही रह जाता दीखता है।

कोई-कोई ह्न द्ध द्व प्रभृति युक्ताक्षर लिखने में नीचे जोड़ा जाने वाला अक्षर अक्षर के पहले ही लगा देते हैं उनकी दृष्टि में इस में कोई हानि नहीं है। लिपि सम्बन्धी चर्चा में शुद्ध' लिख कर एक मेट्रिक पास को पढ़ने को कहा गया, उसने उसे चट से शब्द पढ़ दिया। फिर शब्द लिख कर पढ़ने को कहा तो उसको भी उसने शब्द ही पढ़ा। इस पर उस से पूछा गया कि दोनों प्रकार लिखने मे कुछ अन्तर नहीं है क्या ? उस ने तपाक से कह दिया नहीं। पश्चात् उसे वैसे ही अन्य कई शब्दों के उदाहरण दिये गये तब कहीं वह अपनी भूल को समझ पाया। यह तो हाथ से लिखने की बात है किन्तु एक दैनिक में शब्द के बदले शद्ब ही बहुत बार छपा देखने में आता है। कभी-कभी लिखने, छापने की सरलता के विचार से ऐसा कर लिया जाता हो तो आश्चर्य नहीं। क्योंकि अन्य कुछेक अक्षर ऊपर नीचे सयुक्त करने में जितनी आसानी समझी जाती है उस से कहीं अधिक कठिनाई द ह आदि में नीचे लगाने में महसूस होती है और घसीट लिखने में उस विलम्ब से बड़ी खिन्नता होती है। 'चिह्न' का कदाचित इसी कारण चिन्ह बन गया है. 'आह्वान' का कहीं-कहीं 'आव्हान' होने लगा है। एक पोस्टर मे 'ह्रास' का 'हास' दिखाई दिया है। 'ब्राह्मण' कहीं ब्राम्हण बन जाता है और प्रह्लाद प्रल्हाद के रूप में उपस्थित होता है।

बने बनाये युक्ताक्षरों के सम्बन्ध में एक अन्य बात यह भी है कि मुद्रण में उनके द्वारा प्राय पूर्ण निर्वाह नहीं होता और न सादृश्य ही रह पाता है। उदाहरणतः कहीं कहीं एक ही पाठ म ग्रन्थ मे बनने वाला शब्द विद्युत विद्युत विद्युत विद्युत कई प्रकार देखने म आता है और क्त वाला रक्त रक्त पर उतर आता है ऐसी अवस्था में बने बनाये युक्ताक्षरों का उपयोगित भली प्रकार सिद्ध न होने से उनका भार वहन करते रहना युक्ति युक्त नहीं कहा जा सकता। अतएव इन सब असुविधाओं दुविधाओं और नियम विविधताओं को मिटाने तथा लिपि दोष से होने वाला अशुद्धियों को दूर करने और यान्त्रिक लेखन मुद्रण को सरल सुगम बनाने के लिए उक्त नौ व्यञ्जनों के (र का बदल देने पर शेष द के) भ द जैसे अर्द्ध क निश्चित कर देना युक्ताक्षर लेखन में एक नियमता लाने और लिपि को उच्चारण क्रम देने के विचार से उपयुक्त जान पड़ता है कुछ आगे बढ़ा जा सके तो उन्हें ग ण श जैसा या फ द जैसा पायन्त कर देना पड़ता है ताकि उनके अर्द्ध क अन्य अक्षरार्द्ध को की भांति ही पाई छोड़ कर बनाये जा सकें। अर्द्ध क निश्चित करने में उन अक्षरों में संयोजक चिह्न जैसी छोटी पड़ी रेखा जोड़ना पड़ती है। इस उपाय में उक्त अक्षरों क पूर्णाकार ज्यों क त्यों रह सकते हैं। र के लिए यह उपाय बाधक होता तो उसका बदलने के लिए पहले ही लिख दिया गया है। समस्त व्यञ्जन पायन्त कर देने पर उन में अकार का विद्यमान होना प्रत्यक्ष किया जा सकता है और पाई को अ का स्पष्ट मात्रा माना जा सकता है।

इन दोनों में से कोई भी उपाय काम में लाने से युक्ताक्षर लेखन की जटिल समस्या का सहज ही हल हो जाता है और कोई भी युक्ताक्षर उसके अवयव आगे-पीछे रख कर सरलता से लिखा और सुगमता से पढ़ा जा सकता है। तब न किसी अक्षर को विकृत करना पड़ता है न हल चिन्ह की ही यहा आवश्यकता रहती है। इस प्रकार शब्दों के मध्य किसी अक्षर को अर्द्ध प्रदर्शित करने में, अक्षर और हल् के चिन्हों द्वारा लिखने के भार म मुक्ति मिल सकती है

उक्त नौ व्यञ्जना में ड का आकार कुछ खटक रहा है इस आकार के कारण इसका प्रयोग समुचित न हो कर घट रहा प्रतीत होता है। कहीं-कहीं से इसको बहिष्कृत करने का चर्चा भी सुन पड़ता है। यदि इस का बदल दिया जाता है तो वह विवाद समाप्त हो सकता है और उस का संयुक्त करने की कठिनाई दूर हो सकती है। इसके लिए अर्द्ध द (द) का पलटा हुआ अर्थात् पीठ का ओर दिखाई देने वाला जैसा या ञ म और थ म बनी। जैसी खुण्डी रेफ बनने वाला आकार लिया जा सकता है। पायन्त बनाने में उस में पाइ जोड देनी पड़ती है। यदि केवल किया जाना है तो उसमें लगने वाले बिन्दु के बदले ड का फ द जैसा बनाते हुए अक्षर और पाई के बीच म एक घुण्डी दे दी जा सकती है

ख र व—नागरी व्यञ्जना में ख भ्रमपूर्ण है क्योंकि इस में वर्ण मात्रा के दो अन्य अक्षर र और व स्पष्ट दीखते हैं। माना कि छापे का ख उनको समीप रख कर बनाया गया है किन्तु घसीट लिखने में वैसा कहा विचार रहता है फलत कभी ख को र व और कभी र व को ख पढ़ लिया जाता है। गलत पढ़ा जाने से फिर मुद्रण में अशुद्धि हो जाती है। नवीन अथवा अल्प व्यवहृत शब्दों में तो वैसी सम्भावना रहती ही है एक समाचार पत्र में शेरवानी को शेखानी छपा हुआ देखा गया है और एक जगह रस खान को रसरवान भी, खाना तो अक्सर र वाना हो जाता है पर खाद में कभी कभी स्वाद आने लगता है। अतएव भ्रम और अशुद्धियों से बचने के लिए ख र व में से किसी एक को बदल देना आवश्यक

होता है। यह लेखक विशेषतः र को बदलने के पक्ष में है। (स्वर खण्ड में भी ऐसा संकेत किया जा चुका है। र भिन्न-भिन्न प्रयोगों में भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है, अर्थात् रस, प्रद, द्रव्य, ट्राम में प्रयुक्त (र ्र ्र ्र) चार पूर्ण रूपों में और कर्म, गिऱ्हाईं (मराठी में क्वचित्) में प्रयुक्त (ँ ऱ) दो अर्द्ध रूपों सहित छः रूपों मे काम आता है। एक अक्षर के इतने अधिक रूप लेखन एवं मुद्रण के यान्त्रिक साधनों के लिए असुविधाजनक होते हैं। इसके अतिरिक्त र आकार अत्यन्त क्षीण है इसमें चौड़ाई अन्य अक्षरों की अपेक्षा बहुत कम है, इस लिए लेखन यन्त्र में सब अक्षर समान बॉडी म बनाये जाने से इसके द्वारा शब्दों के अक्षरों में जगह-जगह साधारण से अधिक अन्तर आ जाता है और जब आ की मात्रा के आगे या पीछे आता है तो बीच का अन्तर और भी अधिक हो जाता है जो देखने में बहुत खलता है। माना कि ऐसे क्षीण-काय अक्षर आई, एल (I l) आंग्ल लिपि में भी हैं। परन्तु वहाँ उन्हें कुछ लम्बे सेरिफ देकर निभा लिया गया है।

र को बदलने के लिए वह आकार लिया जा सकता है जो मराठ में क्वचित प्रयुक्त होने वाले अर्द्ध र (चन्द्राकार चिह्न) मे पाई जोड़ कर बनता है। इस से मिलता-जुलता आकार हम आज भी र के एक अन्य रूप में म्प्र, स्त्र आदि में काम मे लाते हैं। वह आकार युक्ताक्षर बनाने में इस प्रचलित आकार से कहीं अच्छा है और सर्वत्र काम दे सकता है। इस कल्पक द्वारा एक नवीन आकार भी कल्पित किया गया है जो ज में नीचे आने वाले घुमाव की तरह ऊपर को घुमाव देकर लेखनी की एक ही लाग द्वारा पाई में मिला देने से बनता है। लिपि के अत्यल्प सुधार में इन में से कोई भी (और विशेष सुधार में अन्तिम) आकार लेने पर र के अनेक रूपों की आवश्यकता नहीं रहती। अन्य पाई वाले अक्षरों के अर्द्धकों की भाति ही पाई छोड़ कर इन के अर्द्धक बनते हैं। यदि अर्द्ध र के ' ँ ' और ' ्र ' रूप में कुछ अन्तर समझा जाता हो और आवश्यक ही हो तो प्रचलित रेफ के तौर पर किसी अक्षर में मिलाने मे उस अक्षर के द्वित्व द्वारा रेफ वाला भाव व्यक्त किया जा सकता है। संस्कृत में तो रेफ वाले प्रायः सभी सभी अक्षरों का द्वित्व होता है परन्तु हिन्दी में यह क्रम धीरे-धीरे छूट रहा है।

यदि ख के सम्बन्ध में ही कुछ किया जाना अभीष्ट हो तो उसके संशोधनार्थ मध्य का ' ꣳ ' अंश (अर्द्ध व जैसा आकार) पाई से न मिला कर र में लगा कर बनने वाला आकार लिया जा सकता है। परिवर्तनार्थ वह रूप उपयुक्त है जो ख को बार-बार जल्द-जल्द लिखने से र और व के मिलने से अनायास ही बन जाता है। द्रुत लेखन में लोग वैसा लिखते भी हैं और कैथी और गुजराती में प्रचलित भी है। इस अवस्था में र को बदलने की आवश्यकता नहीं रहती। केवल उस के अर्द्ध रूप के लिए कोई आकार निश्चित करना शेष रहता है। सो उस के लिए मराठी वाला चिन्ह सर्वत्र प्रयोग के लिए लिया जा सकता है।

क झ फ—नागरी लिपि में ये ३ अक्षर ऐसे हैं जिनकी पीठ की ओर अंकुश जैसा चिह्न लगा है और पाई अन्त में न हो कर मध्य में है। फ में लगा हुआ अकुश तो प से सम्बन्ध बतलाता है अर्थात् प अल्प प्राण से फ महाप्राण बनाया गया है किन्तु क झ के सम्बन्ध में ऐसा कुछ नहीं है। झ अक्षर ज का महा-प्राण है किन्तु बना है वह म में अंकुश देकर अर्थात् यहां एक अंकुश विहीन भी महा प्राण है और अंकुश-युक्त भी।

★

भारतीय संस्कृति का स्वरूप

श्री विश्वनाथ त्यागी

अंग्रेजी भाषा में दो शब्द कल्चर और सिविलिजेशन पाये जाते हैं। इन दो शब्दों का प्रयोग किन्हीं निश्चित अर्थों म यारुप की समस्त भाषाओं में पाया जाता है। मानसिक जाग्रति एव राम के पोप के सम्पूर्ण प्रभुत्व के पतन के पश्चात् राजनीतिज्ञों द्वारा घड़े गय एक तीसरे शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। वह शब्द नेशन था। चौदहवी शताब्दी से ले कर आज तक सभी देशों ने राष्ट्रवाद का प्रचार किया है। अपनी अपना राजनतिक हाड म प्रत्येक देश क राजनीतिज्ञों ने अपने राष्ट्र की नींव को स्थापित करने के लिये कुछ आधार भूत सिद्धांतों में उन्होंने कल्चर और सिविलीजशन का भी स्थान दिया है।

भारतवर्ष ने अपने शताब्दियों के दासत्व काल म कोई मौलिक विचारधारा देशवासियों के सम्मुख नहीं रक्खी। अपितु यहा के शिक्षित समुदाय ने विदेशी लोगों का विचारधारा का अक्षरश अनुकरण करने ही म गौरव अनुभव किया है। इसी लहर के फल स्वरूप हमारे देश में कुछ शब्दो का अधिकाश प्रचार हुआ है। हमने बिना सोचे विचारे नेशन शब्द का अनुवाद राष्ट्र शब्द से कर दिया। परन्तु मेरा विश्वास है कि समस्त नेशनडहू का विचार तथा शब्द भारतीय धर्मिक आकाक्षाओं तथा परम्पराओं के विपरात है।

हमारे सस्कृत भाषा के पण्डित भी इन्हीं दूषित अर्थों में राष्ट्र शब्द का प्रयोग कर रहे हैं।

जिस प्रकार हमारे धर्म, यज्ञ और श्रद्ध शब्दों का अनुवाद दूसरी भाषाओं में नहीं हो सकता इसी तरह नेशन, कल्चर सिविलीजेशन का अनुवाद भी असम्भव है इन पिछले २०, २५ वर्षों में ससार के विद्वानों ने धर्म और राष्ट्रवाद के स्थान पर सस्कृति और सभ्यता का प्रयोग अधिकाशत करना प्रारम्भ कर दिया है। परन्तु इन दो शब्दों का वास्तविक अर्थ क्या है वह प्रयोगकर्त्ताओं को भी पता नहीं। कल्चर और सिविलाजेशन का अनुवाद हमने अपना भाषा में सस्कृति और सभ्यता क शब्दों से किया है। जहा तक अनुवाद करने का प्रश्न है ये दोनों शब्द ठीक प्रकार से कलचर और सिविलीजेशन का प्रतिनिधित्व करते हैं। मेरे अपन विचारानुसार सस्कृति सस्कृ (सस्कार करना) स और सभ्यता सभा से लिए गये हैं। परन्तु सस्कृत और सभ्यता दोनों शब्दो का प्रयोग भारताय साहित्य म मिलना कठिन है।

भारतवष म हजारों वर्षा का सड़ा गली प्रथाओं, परम्पराओं एव दूषित सस्कारों को सस्कृति और सभ्यता के साथ जोड़ने का प्रयत्न किया जा रहा है। और इसी आधार पर हिन्द राष्ट्र का स्थापना का स्वप्न देखा जा रहा है। आज हमारे नवयुवक इस दूषित मनावृत्ति क शिकार होत जा रहे हैं। इस का एक कारण सस्कृत और सभ्यता क वास्तविक अर्थों का न समझना है। विदेशी भाषाओं म ये दानों शब्द क्रमश प्रगति के उन चिन्हों अथवा परिणामों से सम्बन्ध रखते हैं जिन का एक शब्द से वतमान प्रगति कहा जाता है। इस आधुनिक प्रगति की भी आधार शिला डारविन का विकासवाद' है।

इन दो शब्दों का प्रयाग पर्याप्त मात्रा में हमारे साहित्य में विद्यमान है।

किसी देश या प्रात के रीति रिवाजों, निवासियों का वहा की सस्कृति से कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसा कि आजकल सर्वत्र माना जा रहा है।

मेरे विचारानुसार सस्कृति शब्द से व्यक्ति की उस उच्चतम उन्नति से मतलब है जो उस का उच्चतम ध्येय है। इस सस्कृति शब्द में व्यक्ति का न्यूनतम

प्रारम्भिक अवस्था की उन्नति से अन्तिम ध्येय तक पहुँचने के तक समस्त साधनों का समावेश है जो उस आदर्श की प्राप्ति में उस को सहायता प्रदान करते हैं। संस्कृति मानव जीवन का सार है। और जीवन के विकास का सम्पूर्ण क्रम भी इसी में निहित है। यह वैयक्तिक है, सामाजिक नहीं। यह व्यापक तो है किन्तु प्रांतीय नहीं। यह आत्मा के विकास की साधका है न कि बाह्य स्थूल आकार की पोषका। संस्कृति का क्षेत्र व्यक्त अथवा है और सभ्यता का क्षेत्र शरीर अथवा समाज है।

जिस प्रकार किसी वृक्ष की जड़ ले कर फूल तक उस का बाहरी आकार—उस वृक्ष की सभ्यता है, और उस वृक्ष के फल की सुगन्धि उस की आत्मा। इसी प्रकार किसी व्यक्ति के जीवन का वैयक्तिक स्वरूप जो प्रतिक्षण उस के नैतिक आचार विचार में प्रगट होता है उस व्यक्ति की संस्कृति है। संस्कृति का कार्य किसी वस्तु को स्थूल से स्थूल बना कर उत्तरोत्तर बहुमूल्य बना देना है। इन्हीं अर्थों में कल्चर शब्द का प्रयोग अंग्रेजी भाषा में होता है। सल्फ कल्चर एग्रीकल्चर हार्टीकल्चर फिजीकलचर शब्दों में कल्चर शब्द का प्रयोग हुआ है। संस्कृति शब्द संस्कार से निकला है। जो कार्य व्यक्ति के जीवन में संस्कार करते हैं वही संस्कृति करती हैं बिना संस्कारों के व्यक्त अथवा जाति उन्नति नहीं कर सकते। परन्तु जब किसी मनुष्य समुदाय में संस्कारों के रूप की पूजा अधिक होने लगती है और उस की आत्मा को भुला दिया जाता है तो वह मनुष्य समुदाय रूढ़ियों का दास बन कर अधःपतन को प्राप्त होने लग जाता है।

उस आदर्श की प्राप्ति के लिए जितने साधन प्रयोग में लाये जाते हैं, वे सभी संस्कृति के अन्तर्गत हैं। आन्तरिक उन्नति के लिए जैसे खाद और पानी आवश्यक है उसी प्रकार मनुष्य की आत्मिक उन्नति के लिए सदाचार रूपी भोजन और परमात्मा के प्रति श्रद्धाञ्जली नितांत आवश्यक है। समस्त धर्मों में जितना भी आध्यात्मिक अथवा नैतिक साहित्य है वह एक संस्कृति की उन्नति और रक्षा के लिए है। जहां भारतीय आदर्श सादा जीवन तथा उच्च विचार के बदले पेचीदा जीवन तुच्छ विचार का पाठ पढ़ाती है। आज कल के समाज की भित्ति केवल हिंसा और शोषण पर निर्भर है वहां हमारे ऋषियों ने समाज का आदर्श जैसा कि मन्त्रों में वर्णित है, अहिंसा और व्यक्ति का आदर्श (नियमों में वर्णित) पवित्रता बताया है जीवन की पवित्रता तथा जनता की सेवा यह साधन बताये हैं।

यदि दूसरे प्रकार से संस्कृति और सभ्यता को समझने का प्रयत्न करें तो वह वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत कर सकता हूं। आश्रम व्यवस्था सीधा संस्कृति की साधक है और वर्ण व्यवस्था सभ्यता का साधक है। आधुनिक अर्थशास्त्र में सभ्यता की परिभाषा इन शब्दों में की गई है—सभ्यता का अर्थ है आवश्यकताएं बढ़ा कर उन की पूर्ति का उपाय करना अर्थात् जितना ही कोई व्यक्ति अथवा समाज विलास प्रिय होगा उतना ही वह अधिक सभ्य कहलायेगा। यही सभ्यता, संस्कृति के अर्थ में प्रयोग किया है। परन्तु लगभग १००० वर्ष पूर्व समस्त धर्मों में वे ही व्यक्ति सम्मान और प्रतिष्ठा के योग्य समझे जाते थे जिन का त्याग और तप से ओतप्रोत होता था। योरुप में ईसाई धर्म का इतिहास त्यागी और तपस्वी पादरियों की कथाओं से भरा पड़ा है।

जिस प्रकार व्यक्ति और समाज का निश्चय करते समय भारतीय ऋषियों ने वैयक्तिक उन्नति को साधन माना है इसी प्रकार संस्कृति को साध्य और सभ्यता का साधक मानना चाहिए। आज व्यक्ति और समाज का, संस्कृति और सभ्यता का परस्पर संघर्ष ही संसार

उलझनों का मुख्य कारण हैं।

जर्मनी देश के परम विख्यात दार्शनिक श्री स्पैंगलर ने अपनी एक प्रसिद्ध पुस्तक मे इस बात का बलपूर्वक मण्डन किया है कि संस्कृति की केवल एक विशेषता यही है कि हमें शरीर के आत्मा की पूजा का पाठ सिखाती हैं।

जितना ही अधिक संसार के लोग धर्म के बाहरी आडम्बरों रीति रिवाजों और शरीर की पूजा पर बल देंगे—संस्कृति का उतना ही पतन होता जायेगा।

अन्य कई देशों के स्त्री पुरुषों के दैनिक जीवन मे सत्य, न्याय तथा दया आदि गुणों का हम भारतीय लोगों से कहीं अधिक समावेश है। वास्तव में किन्हीं बातों को छोड़ कर हम से अधिक अच्छे आर्य हैं और सुसंस्कृत हैं, जब जब मैं योरुप अमेरिका से लौटे हुए अपने मित्रों के मुह से वहा के लोगों के दैनिक जीवन के सम्बन्ध में बाते सुनता हूँ तो भारत के आर्य की याद आ जाती है और ऐसा लगता है कि सच्चे अर्थों में ये ही लोग आर्य हैं। परन्तु जब उन की सामाजिक व्यवस्था और अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक और आर्थिक चालों को देखता हूं तो एक बड़ा पारस्परिक विरोध मेरे सामने आ कर खड़ा हो जाता है और एक भीषण समस्या उपस्थित हो जाती हैं कि किस प्रकार और क्या ये आर्य लोग अपने राजनैतिक जीवन में इतने घोर राक्षसी कामों के करने के लिए उतारु हो जाते हैं। मैंने इस समस्या पर गम्भीर विचार किया है और इस परिणाम पर पहुँचा हू कि इन देशों की उत्तम संस्कृति एक दूषित सभ्यता के लिए बलिदान की जा रही है और इसी लिए संसार में महान् अशांति है और एक महायुद्ध के पश्चात् दूसरे महायुद्ध की तैयारियां होने लगती हैं।

इस समस्त अशांति और संसार की भुखमरी को दूर करने के लिए केवल एक ही उपाय है और वह यह कि आधुनिक कुत्सित सभ्यता को जड़ से उखाड़ कर फेंक दिया जाए और उस के स्थान पर प्राचीन सभ्यता को खड़ा किया जाये जिस का आदर्श होगा 'जिओ और जीने दो।' इस व्यवस्था मे व्यक्ति अथवा समाज द्वारा शोषण करने का कोई स्थान न होगा पूर्ण अहिंसा पर समाज की नींव रक्खी जायेगी।

लाखों वर्षों के पश्चात् ऋषि दयानन्द ने संसार को सुमार्ग दिखाया और वैदिक ज्ञान के आधार पर इस आधुनिक पैशाचिक सभ्यता को नष्ट करने के लिए सर्व प्रथम चुनौती दी।

भारतीय समाज की आधार शिला यज्ञ पर निर्भर हैं, जिस से व्यक्ति और समाज को नितात अहिंसावादी और परमार्थी बनना चाहिए। ये दो सिद्धांत अहिंसा और त्याग, भारत की आधार शिला हैं। वैदिक वर्ण व्यवस्था के ये ही दो मूल सूत्र हैं। इस व्यवस्था की स्थापना से वैदिक सभ्यता का बोलबाला होगा और तब उस संस्कृति का जो सदैव सार्वकालिक और सार्वभौमिक है। सच्चा स्वरूप संसार के सामने आयेगा। वह आज भी प्रत्येक देश में विद्यमान हैं परन्तु भिन्न-भिन्न देशों की भिन्न-भिन्न सभ्यताओं पर इस को बलिदान किया जा रहा है।

यदि हम भारतवासी संस्कृति और सभ्यता के वास्तविक अर्थों को समझलें और फिर उस के प्रचार के लिए क्रियात्मक रूप से कटिबद्ध हो जाये तो संसार में शांति स्थापना के अग्रदूत बन सकते हैं।

[गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर दिया गया भाषण।]

★

आम के उपयोग

श्री सोमदेव शर्मा

साधारणतया प्रत्येक गृह में आम का उपयोग, अमचूर, चटनी, अचार, मुरब्बा, शर्बत, पानक (पना) हलुआ, अमाँवट (आम्रावर्त) के रूप में हुआ करता है। मुरब्बों का संस्कृत में रागषाडव या रागखाडव कहते हैं।

निर्माणविधि—कच्चे आमों का छील कर दो-दो या तीन-तीन टुकड़े कर कुछ घृत में भून कर खाड की चासनी में पकावें और फिर शीतल होने पर उस में काली मीरच, छोटी इलायची और कपूर मिला कर किसी मिट्टी के चिकने बर्तन म रख दे।[1]

आम्रवर्त—पके आम के रस का किसी मोटे कपड़े, टाट या बोरी पर बार-बार डाल कर धूप में सुखाने से आम्रावत या आम पपड़ी बनती है।[2]

आम का औषधि रूप में उपयोग

महर्षि चरक ने आम का उपयाग, हृद्य[3], छर्दि-निग्रह[4], पुरीष[5] संग्रहणीय (ग्राही) और मूत्र[6] संग्रहणीय रूप में लिखा है तथा महर्षि सुश्रुत ने न्यग्रोधादिगण[1] में मूत्रशोधक एवं प्रमेह नाशक रूप म निर्देश किया है।

पित्तज[2] वमन नाशक क्वाथ

आम और जामुन के समान भाग कोमल पत्तों का क्वाथ, शीतल होने पर शहद मिला कर पीने से पित्तज वमन का नष्ट करता है।

आचार्य वाग्भट ने उपर्युक्त चरक संहिता के प्रयोग में खस और वट जटाङ्कुर (बरगद की लटकती हुई दाढ़ी) यह दो वस्तुयें और मिला कर 'क्वाथ' अथवा 'हिम' बना कर पीने का निर्देश किया है। आचार्य शार्ङ्गधर ने वाग्भट के प्रयाग को 'फाण्ट' बना कर देने का निर्देश किया है और वमन के साथ ज्वर, प्यास, अतिसार और भयंकर मूर्च्छा का नाशक इसको लिखा है। आचार्य चक्रपाणि ने इस प्रयोग में धनिया खस, सुगन्धबाला और गवेधुक (एक जगली कुधान्य) यह वस्तुये मिला कर 'हिम' बना कर देने का निर्देश किया।

पित्तातिसार नाशक प्रयोग

आम की मज्जा (गुठली के भीतर की मींग),

---

१ आममाम्रं त्वचाहीनं द्विस्त्रिर्वा खण्डितं ततः।
भृष्टमाज्ये मनागस्त खण्डपाकेऽथ युक्ततः॥
सुपक्वं च समुत्तीर्य मरीचैलेन्दुवासितम्।
स्थापितं स्निग्धमृद्भाण्डे रागखाण्डव सम्मितम्॥
(योग रत्नाकर)।

२ पक्वस्य सहकारस्य पटे विस्तारितो रसः।
घर्मशुष्कोमुहुर्दत्त आम्रावर्त इति स्मृतः॥
(भावप्रकाश)।

३ आम्राम्रातक ' मस्तुलुङ्गनोति दशेमानि हृद्यानि भवन्ति।

४ जम्ब्वाम्रपल्लव ' मृल्लाजा इति दशेमानि छर्दि निग्रहणानि भवन्ति।

५ प्रियंगवनन्ताम्रास्थि पद्मकेशराण्येतदशेमानि पुरीषसंग्रहणीयानि भवन्ति।

६ जम्ब्वाम्रप्लक्ष ' सोमवल्का इति दशेमानि मूत्रसंग्रहणीयानि भवन्ति।
(चरक० सूत्र० अ० ४)।

१ न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षमधुककपीतनककुभाम्र '' नन्दी वृक्षश्चेति।
न्यग्रोधादिर्गणोवृण्य: संग्राही भग्नसाधक:।
रक्तपित्तहरो दाहमेदोघ्नो योनिदोषहृत्॥
(सुश्रुत० सूत्र अ० ३८। ४७–४८)।

२ जम्ब्वाम्रयोः पल्लवज कषायं।
पिबेत्सुशीत मधुसंयुतवा॥
(चरक० चिकि० अ० १९। ६०–६१)

कायफल, सोंठ, पाठा, जामुन की मज्जा और जवासा इन सब वस्तुओं को सम भाग लेकर तण्डुलोदक (चावल के धोवन के पानी) के साथ पीस शहद मिला कर पीने से पित्तातिसार नष्ट हो जाता है।[1]

महर्षि सुश्रुत[2] ने भी आम की मज्जा को मुलहठी, बेलगिरी, नील कमल, सुगन्धवाला, खस और सोंठ के साथ जौ कुट कर क्वाथ बनावे। शीतल होने पर शहद डाल कर पीने से पित्तातिसार नाशक माना है। आचार्य चक्रपाणि और शार्गधर ने भी आम्र की की मज्जा और बेलगिरी के क्वाथ में शहद और मिश्री डाल कर पीना, सब प्रकार के अतीसार और वमन में हितकर माना है।

पक्वातिसार नाशक प्रयोग

सम भाग आम की मज्जा (गुठली के भीतर की मींग), लोध, बेलगिरी और प्रियङ्गु को चावल के धोवन के पानी के साथ २ माशा की मात्रा में शहद के साथ पीने से पक्वातिसार नष्ट होता है।[3]

रक्तातिसार नाशक प्रयोग

आम, जामुन और आमले के कोमल पत्तों को कूट कर निकाला हुआ स्वरस और बकरी का दूध समान भाग मिला कर शहद डाल कर पीने से यह रक्तातिसार को नष्ट करता है।[1]

रक्तपित्त नाशक आम्रादि हिम

समान भाग आम, जामुन और अर्जुन की छाल के चूर्ण के हिम-क्वाथ में शहद डाल कर प्रातःकाल पीने से रक्त पित्त नष्ट हो जाता है।[2]

प्रमेह नाशक न्यग्रोधादि चूर्ण

वट जटा (बरगद की जटा) के लटकते हुए अंकुर, गूलर, पीपल, सोनापाठा, अमलतास, विजयसार आम और जामुन की मज्जा, कैथ का फल, चिरौंजी, अर्जुन, धव, महुआ, मुलहठी, लोध, वरुणा, फरहद, पटोलपत्र, मेढासिंगी, दन्ती, चित्रक, अरहर, करञ्ज (कञ्जा का फल), त्रिफला, इन्द्र जौ, भिलावा, इन सब वस्तुओं को समान भाग लेकर बनाये गये इस न्यग्रोधादि चूर्ण को शहद के साथ चाट कर त्रिफला का क्वाथ पीने से मूत्र शुद्ध होता है और बीस प्रकार प्रमेह नष्ट होते हैं।[3]

---

१ कट्फल नागर पाठा जाम्ब्वाम्रास्थि दुरालभाः।
योगाः षडेते सक्षौद्रास्तण्डुलोदक संयुताः॥
पेयाः पित्तातिसारघ्नाः श्लोकार्धेन निदर्शिताः।
(चरक चिकि० अ० १६। ६०-६१)

२ मधुकोत्पल बिल्वाम्रह्रीवेरोशीरनागरैः।
कृतः क्वाथो मधुयुतः पित्तातिसारनाशनः॥
(सुश्रुत० उत्तर अ० ४। ३-६)।

३ आम्रास्थिमध्य लोध्र च बिल्वमध्य प्रियङ्गु च।
चत्वार एते योगाः स्युः पक्वातीसारनाशनाः।
उक्ता ये उपयोज्यास्ते सक्षौद्रास्तण्डुलाम्बुना॥
(सुश्रुत उत्तर अ० ४०।६७-६८)

१ जम्ब्वाम्रामलकीना तु पल्लवानथ कुट्टयेत्।
संगृह्य स्वरसं तेषामजाक्षीरेण योजयेत्॥
तं पिबेन्मधुना युक्तं रक्तातीसारनाशनम्॥
(चक्रदत्त अतीसार चि०)

२ आम्रजम्बू च ककुभ चूर्णीकृत्य जले क्षिपेत्।
हिम तस्य पिबेत्प्रातः सक्षौद्रं रक्तपित्तजित्॥

३ न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थ श्योनाकारग्वधासनम्।
आम्रजम्बू कपित्थ च पियालं ककुभं धवम्॥
मधूका मधुकं लोध्र वरुणः पारिभद्रकम्।
पटोल मेषशृङ्गी च दन्ती चित्रमाढकी॥
करंज त्रिफला शक्रभल्लातकफलानि च।
एतानि समाख्यातानि श्लक्ष्णा चूर्णानि कारयेत्।
न्यग्रोधाद्यमिद चूर्णं मधुना सह लेहयेत्॥
(सिद्धयोग)

गुरुकुल समाचार

ऋतु

गुरुकुलोत्सव समाप्त होते ही ग्रीष्म काल अपने पूरे प्रभाव के साथ प्रारम्भ हो गया है। दिवस खूब तप रहे हैं। रात्रियां शीतल हैं। धूल भरी आंधियां प्रारम्भ हो गई हैं। शिवालक की पर्वतमाला पर दावानल के दृश्य दिखाई देने लगे हैं। जामुन, नीम, शिरीष, गुलमोर आदि वृक्षों की मीठी सुवास से गुरुकुल नगरी की पथ-वीथियां महक उठी हैं। वाटिका में ग्रीष्मकालीन गुलाब और मोतिया शीतल और सुहावने प्रभात को आमोदित करने लगे हैं। ब्रह्मचारियों के नहर-स्नान और तैरी की सरगर्मियों से प्रात: सायं नहर के किनारे गूंज उठते हैं। अभी तक छात्रों के लिए पर्वत यात्राएँ प्रारम्भ नहीं हुई हैं। छात्रों का स्वास्थ्य अच्छा है।

नया सत्र और दीर्घावकाश

उत्सव के पश्चात् सभी विभागों की नए वर्ष की पढ़ाईयां नियमित प्रारम्भ हो गई हैं। नए सत्र की पुस्तकें वितरण हो चुकी हैं। महाविद्यालय विभाग का दो मास का दीर्घावकाश १४ मई से प्रारम्भ हो जायगा विद्यालय विभाग की डेढ़ महीने की छुट्टियां २५ मई से प्रारम्भ होंगी। विद्यालय के छात्रों के लिए किसी स्वास्थ्यप्रद पर्वत स्थान की ज्ञान-यात्रा का प्रबन्ध किया जा रहा है। महाविद्यालय के छात्रों की एक मंडली काश्मीर यात्रा का आयोजन कर रही है एक मंडली गंगोत्री जा रही है।

विशेष व्याख्यान

उत्सव के पश्चात् मान्य पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार कुल में एक सप्ताह रहे। इस बीच में महाविद्यालय वाग्वर्धिनी सभा की अध्यक्षता में आपने विकासवाद अध्यात्मवाद और मोक्षवाद विषयों पर तीन विचारोत्तेजक व्याख्यान देते हुए भारतीय विचारधारा की मौलिकता और सर्वगामिता का सुन्दर प्रतिपादन किया।

गुरुकुलीय आर्यसमाज की सरक्षा में अरविन्द आश्रम के विख्यात विद्वान् श्री अम्बालाल पुराणी जी ने श्री अरविन्द के जीवन-कर्म और उन की दार्शनिक पृष्ठ भूमिका का समझाने वाला एक ज्ञानप्रद व्याख्यान दिया।

मान्य अतिथि

ग्रीष्मावकाश होने से आजकल भारत के विभिन्न प्रान्तों के यात्रियों का आगमन हरिद्वार ऋषिकेश आदि स्थानों में विशेष रूप से होता है। इन में गुरुकुल दर्शनार्थ भी बहुत से शिक्षा-प्रेमी जन आते रहते हैं। सौराष्ट्र सरकार के शिक्षा विभाग के सहायक सचालक श्री चन्दुलाल पटेल उस दिन गुरुकुल पधारे। आपने वेद ध्ययन की श्रेणी में बैठ कर श्री आचार्य जी का प्रवचन सुना और वैदिक अध्ययन की गुरुकुलीय पद्धति का बहुत गुणगान किया। पुस्तकालय और दोनों सग्रहालयों को देख कर आपने बहुत प्रसन्नता प्रकट की। मुंबई के स्वर्गीय गुरुकुल प्रेमी सेठ शूरजी वल्लभदास के सुपुत्र और सुपुत्रियों ने परिवार सहित गुरुकुल के सब विभागों का अवलोकन किया। एक दिवस आप लोगों ने गुरुकुल के समस्त छात्रों को प्रीतिभोज कराया।

रवीन्द्र-जयन्ती

साहित्य-गोष्ठी की ओर से ७ मई को कवीन्द्र रवीन्द्र जी का जन्मोत्सव श्री शंकरदेव विद्यालंकार के सभापतित्व में मनाया गया। जिस में छात्रों ने गुरुदेव की विशिष्ट और नमूनेदार साहित्यिक कृतियों का वाचन और विवेचन किया। सभापति जी ने कवीन्द्र की प्रतिभा को बताने वाले जीवन प्रसंगों को सुनाते हुए उनकी कुछ एक उत्तम रचनाओं का स्पष्टीकरण और महत्त्व समझाया। कविराज श्री हरिदास शास्त्री ने कवीन्द्र के विषय में अपने निजू संस्मरण सुना कर उन को श्रद्धाजलि अर्पित की।

आश्रम सभाओं के चुनाव

नवीन सत्र के प्रारम्भ होते ही आश्रम की विविध सभाओं के चुनाव हो गए हैं। नए कार्यकर्ता इस प्रकार है—

कुल मन्त्री–ब्र० नरपति १४ श।
कुल उपमंत्री–ब्र० सत्यव्रत १३ श।
वाग्वर्धिनी सभा—मन्त्री–ब्र सत्यव्रत १३ श।
उपमंत्री–ब्र० विश्वबन्धु १२ श।
साहित्यपरिषद्—मंत्री–ब्र० राजीव १४ श।
उपमंत्री–ब्र० भगतसिंह १३ श।
साहित्यगोष्ठी—मंत्री–ब्र० राजीव १४ श।
उपमंत्री–ब्र० अनन्त कुमार १३ श।
कॉलेज यूनियन—मंत्री–ब्र० वीरेन्द्र १३ श।
उपमंत्री–ब्र० धर्मदेव १२ श।
संस्कृतोत्साहिनी—मंत्री–ब्र० महावीर १३ श।
उपमंत्री–ब्र० जयपाल १२ श।
क्रीडामंत्र–ब्र० शीलकांत १४ श।
उपमंत्री–ब्र० अनन्त कुमार १३ श।
वाद्यदल नायक–ब्र० सुधाकर १४ श।
उपनायक–ब्र० महेन्द्र कुमार १३ श।

महोत्सव के वृत्त

गुरुकुल का ५४ वाँ वार्षिक महोत्सव ११, १२, १३, १४ एप्रिल के दिनों मे आनन्द और उल्लास के साथ मनाया गया। पहले दिन प्रभात में यज्ञ के पश्चात् मण्डप के पूर्व द्वार के सन्मुख श्री आचार्य प्रियव्रत जी ने ओम् का पताका फहराई और इस ध्वजा के महत्व पर संक्षिप्त प्रवचन किया। इसके पश्चात् उत्सव की शुरूआत के लिए श्री स्वामी अभेदानन्द जी का मांगलिक धर्मोपदेश हुआ। भजनोपरांत श्री आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ की अध्यक्षता में वेद सम्मेलन संपन्न हुआ जिसमें महाविद्यालय के छात्रों में ब्र० सत्यव्रत, विश्वबन्धु, जयपाल और ओम्प्रकाश ने विविध वैदिक विषयों पर निबन्ध पाठ किया। वेदोपाध्याय श्री पं० रामनाथ वेदालंकार ने 'ऋषि दयानन्द द्वारा वेदार्थ में क्रान्ति' इस विषय पर समालोचनात्मक निबन्ध पढ़ा। सभापति जी का भाषण अन्यत्र दिया गया है।

अपराह्न में भजनों के पश्चात श्रीयुत पं० प्रकाशवीर जी का ओजस्वी भाषण हुआ। तत्पश्चात् रामजस कालेज दिल्ली में संस्कृत साहित्य के उपाध्याय श्री नरेन्द्रनाथ चौधरी एम ए शास्त्री की अध्यक्षता मे संस्कृत में सरस्वती सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। जिसमें विद्यालय और महाविद्यालय विभाग के छात्रों ने 'साम्प्रतं भारतस्य आर्थिक समास्याया समाधानं साम्यवाद कार्यक्रमेणैव संभवति' इस विषय पर एक मनोहर वाद-विवाद हुआ। सभापति श्री ने छात्रों की संस्कृत भाषिता की सराहना और अभिनन्दन किया। वाद विवाद में इन छात्रों ने भाग लिया—

ब्र० जयवीर १० म, सुरेश १० म, देवेश्वर ११ श प्रशान्त ९ म, गोपाल ११ श, विश्वबन्धु १२ श, जयपाल १२ श, नरपति १४ श।

रात्रि के श्री स्वामी अभेदानन्द जी महाराज की बोधक धर्मकथा हुई और श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति (सम्पादक सार्वदेशिक) का मनोहर भाषण हुआ।

दूसरे दिवस यज्ञ और भजन-कीर्तन के अनन्तर श्री स्वामी व्रतानन्द जी ने भूलोकोत्थान के साधन विषय पर एक प्रेरणात्मक उपदेश दिया। इसके पश्चात् श्रीयुत महाशय कृष्ण जी के सभापतित्व में सरस्वती सम्मेलन हिन्दी मे प्रारम्भ हुआ। इसमें वाद-विवाद का विषय रक्खा गया था—वर्तमान समय में भारत में उद्योगों का राष्ट्रीयकरण हितकर है या नहीं।

सभापति जी ने बताया कि आज संसार दो समूहों में बटा हुआ है—अमेरिका और रूस। भारत इन दोनों की विचारधारा को मध्य मार्ग पर लाना चाहता

है। अमेरिका का जोर इस बात पर है कि मनुष्य के जीवन स्तर को नीचे लाकर आर्थिक विषमता दूर करनी चाहिए। भारत स्वेच्छापूर्वक त्याग को नैतिक भावना पर बल देकर आर्थिक विषमता को दूर करना चाहता है। यह धार्मिक भावना ही समस्या का हल ला सकती है। अपराह्न में भजनों के बाद श्री प० विश्वनाथ त्यागी ने वैदिक वर्णव्यवस्था की महत्ता प्रदर्शित करने वाला एक अध्ययनपूर्ण और विचारोत्तेजक भाषण दिया। आपने अनेक पाश्चात्य विद्वानों के प्रमाण देकर बताया कि किस प्रकार समाज की संघटना का वैदिक सिद्धान्त ही विश्व की समस्याओं को हल कर सकता है। उनके पश्चात् श्री प्रकाशवीर जी ने 'भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान' विषय पर मनोहर भाषण दिया। श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक ने अपने भाषण में इस बात पर बल दिया कि स्वराज्य तो मिल गया है। पर उसे सुराज्य बनाने पर ही हमारे कष्ट दूर हो सकेंगे।

रात्रि को मेरठ कालेज के प्रोफेसर श्री धर्मेन्द्रनाथ जी तर्क शिरोमणि ने संस्कृत विद्या का भविष्य इस विषय पर तथ्यपूर्ण भाषण दिया। गत शता में पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत विद्या की खोज और अनुशीलन के लिए कैसा भागीरथ प्रयत्न किया है इसका आपने विस्तार से दिग्दर्शन कराया। उनके पश्चात् श्री प० बुद्धदेव जी विद्यालंकार ने अपनी ओजपूर्ण भाषा में आर्यसमाज में कार्यकर्ताओं की आवश्यकता इस विषय पर भाषण किया।

तीसरे दिन प्रभात के कार्यों से निवृत्त होते ही समस्त गुरुकुलवासी कार्यालय के सामने झंडा चौक में एकत्र हुए। गुरुकुल की स्वामिनी सभा के सदस्यगण संन्यासी महात्मा और अन्य माननीय मेहमान भी झंडा चौक की रौनक बढ़ा रहे थे। सब ने मिलकर कुल-पताका-गीत गाया और उसके अनन्तर स्वामिनी सभा के प्रधान (चांसलर) श्री प० ठाकुरदत्त जी अमृत-धारा ने कुलपताका का आरोहण किया। वाद्य निर्घोषों के साथ अनेक जयकारे बोले गए और सदा की भाँति शोभायात्रा (जुलूस) में व्यवस्थित होकर उत्सव मंडप की ओर प्रस्थित हुए। आगे आगे विश्वविद्यालय के वाद्य बज रहे थे। उत्सव मंडप लता पल्लवों से सजा हुआ था। वहाँ पर सब शिष्ट-वरिष्ठ जनों के यथा स्थान बैठ जाने पर कुलवन्दना का गीत गाया गया। शङ्खनाद द्वारा दीक्षान्त-विधि का प्रारम्भ घोषित किया। होमाग्नि प्रदीप्त करके नव-स्नातकों ने मन्त्र-पाठ द्वारा व्रत ग्रहण किया। नवस्नातकों को वाद्यध्वनि के साथ चोले पहनाए गए और श्री आचार्य जी ने उनको प्रमाणपत्र प्रदान करके उपनिषद् के प्रख्यात वचनों द्वारा उपदेश दिया। इसके पश्चात् माननीय श्री विजन कुमार मुखोपाध्याय ने पहले अंगरेजी में दीक्षान्त प्रवचन किया बाद को अपने भाषण का सार भाग संस्कृत भाषा में सुनाया। दीक्षान्त भाषण के मुख्य २ अंश श्र प० सुखदेव जी ने जन-सामान्य के लिए पढ़ सुनाये। सौभाग्य से इसी समय श्रीयुत गुरु जी (श्री माधवराव गोलवलकर जी) उत्सव मण्डप में पधारे। आपने नवस्नातकों का स्वागत और अभिनन्दन करते हुए कहा—आज इस शुभ अवसर पर महर्षि दयानन्द का वह ओजपूर्ण वचन याद आ रहा है "वयं साम्राज्यवादिनः"। आर्य साम्राज्य के नाम से भय खाने की जरूरत नहीं है। क्योंकि हम उस के द्वारा सत्य श्रेष्ठ और अटल सिद्धान्तों को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। आत्म विश्वास के बल पर ही महान् आर्य साम्राज्य स्थापित किया जा सकता है। आज स्थिति क्या है। चारों ओर से वातावरण भीतिग्रस्त है। कहा जाता है धीरे बोलो, कम बोलो या मत बोलो। सर्वत्र दब्बूपन की भावना दीख रही है ऐसी निकृष्ट भावना के सामने आत्म विश्वास को बुलन्द करने वाला भारत है—'वयं साम्राज्य वादिनः'। उस पुनर्जाग्रत करने की आवश्यकता है।

स्थय पर श्रद्धा रख कर आगे बढ़ने का मार्ग निकालना हमारा कार्य होना चाहिए। इन दिनों अपनेपन का भाव दिन प्रतिदिन कम हो रहा है। परानुकरण का भयावह वातावरण बढ़ रहा है— उसे दूर करना आपका काम है। आधुनिकतम कहाने वाले वादों में श्रेष्ठवाद जो वह प्राचीन मार्ग है—वही आत्मविश्वास का मार्ग है। दृढ़ विश्वास के साथ मानवता के प्रति अपने को समर्पित करने से ही यह महान कार्य सिद्ध हो सकेगा। मानव-जीवन को समुज्ज्वल करने के लिए संघर्ष का मुकाबला करने के लिए आपको निमन्त्रित करता हूं।

तत्पश्चात् पुराने स्नातकों की ओर से तपस्वी राष्ट्रकर्मी स्नातक श्री पूर्णचन्द्र जी विद्यालंकार ने नवस्नातकों का बड़े सरल और सौम्य शब्दों में स्वागत किया। (वह वक्तव्य अन्यत्र छपा है)। नव स्नातकों की ओर से श्री भू तिकांत विद्यालकार ने बड़ा भावनापूर्ण भाषा में गुरुजनों, शिष्ट-वरिष्ट पूज्यजनों और स्नातकों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए उस का उत्तर दिया। विनम्र भावुकता के इन उद्गारों से श्रातृवृन्द के नयन भीगे हुए जा रहे थे।

सन्यासी महात्माओं की ओर से श्री स्वामी अभेदानन्द जी ने आशीर्वाद में नवस्नातकों के प्रति कहा—श्रद्धा और तप के बल से आप स्नातक बने हैं। उसी के बल से अब आप कार्यक्षेत्र में आईए। आपका स्वागत है।

स्वामिनी सभा के प्रधान (चांसलर) श्री प० ठाकुरदत्त जी अमृतधारा ने वैदिक मन्त्रों द्वारा नवस्नातकों को आशीर्वाद दिया। इन आशीर्वचनों का समस्त वेद-मंडली ने अनुवचन किया। पश्चात् विश्वविद्यालय के प्रस्तोता श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालकार ने राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र प्रसाद जी का तार द्वारा भेजा हुआ आशीर्वाद सदेश पढ़ सुनाया—इसके बाद कुल-वन्दना गाई गई और दीक्षान्त समारोह समाप्त हुआ।

अपराह्ण में श्री प० यशपाल जी सिद्धान्तालंकार का भाषण हुआ और फिर आचार्य श्री प्रियव्रत जी का व्याख्यान और धन संग्रह के लिए अपील हुई। दान में प्राप्त एक लाख दस हजार की राशि घोषित हुई।

रात को श्री पूज्य आनन्द स्वामी जी महाराज की बहुत सात्विक और रसपूर्ण धर्मकथा हुई और बाद में श्री प० ठाकुरदत्त जी अमृतधारा का बोधप्रद व्याख्यान हुआ।

चौथे दिन प्रभात में श्री आचार्य जी ने नव प्रविष्ट ब्रह्मचारियों का उपनयन किया तथा वेदारम्भ संस्कार करके ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया। इस साल ६० नए ब्रह्मचारी प्रविष्ट हुए हैं।

अपराह्ण में श्री प० सुखदेव जी विद्यावाचस्पति का का आर्यसमाज का महत्व और उसकी आवश्यकता पर आलोचनात्मक भाषण हुआ। इसके अनन्तर हिन्दूकोड बिल के पक्ष और विपक्ष के विचारों का स्पष्टीकरण करने वाला एक दिलचस्प वाद-विवाद सम्मेलन श्री स्वामी अभेदानन्द जी के सभापतित्व में हुआ। जिसमें निम्नलिखित विद्वानों ने भाग लिया—

श्री प० विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय, श्री आचार्य प्रियव्रत जी डॉक्टर सत्यकेतु विद्यालकार, श्री प० भीमसेन विद्यालकार, श्री प० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति, श्री प० विश्वनाथ जी त्यागी, श्री प० बुद्धदेव जी विद्यालकार, श्री प० हरिदत्त जी वेदालकार।

रात को श्री प० दीनदयालु जी शास्त्री की अध्यक्षता में व्यायाम सम्मेलन हुआ जिसमें गुरुकुल के छोटे-बड़े सभी छात्रों ने व्यायाम, कवायद और अग्निबल के अनेक प्रयोग किए। श्री आचार्य जी द्वारा उत्सव की सफलता के लिए सब सहकर्मियों और सहयोगियों का कृतज्ञता ज्ञापन किया गया। परम पिता परमात्मा का धन्यवाद और कुलमाता व भारतमाता के जयकारों के साथ उत्सव समाप्त हुआ।

[शेष पृष्ठ २७ पर]